डिस्टैंस ऐजुकेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : एम.ए. भाग-1 *सैमेस्टर-2*

पत्र : दूसरा (भाषा विज्ञान) *एकांश संख्या : 1*

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 भाषा–उत्पत्ति के सिद्धांत और भाषा का विकास

1.2 भाषा की विशेषताएं और परिवर्तन के कारण

1.3 ध्वनि विज्ञान : ध्वनियों का वर्गीकरण

1.4 ध्वनि परिवर्तन : प्रकार, दिशाएं, कारण

Department website : www.pbidde.org

पाठ संख्या 1.1

भाषा : उद्‌भव और विकास

पाठ की रूपरेखा

1.1.0 उद्देश्य
1.1.1 प्रस्तावना
1.1.2 भाषा का उद्‌भव
1.1.3 भाषा उत्पत्ति के सिद्धान्त
1.1.4 हिन्दी भाषा का विकास
1.1.4.1 आदिकाल
1.1.4.2 मध्यकाल
1.1.4.3 आधुनिक काल
1.1.5 बोध प्रश्न

1.1.0 उद्देश्य :

इस पाठ से आपके दूसरे पत्र 'भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा' का अध्ययन आरंभ होता है। इस पाठ में आपको भाषा के उद्‌भव एवं विकास का परिचय दिया जाएगा। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि;

* भाषा का उद्‌भव किस प्रकार हुआ,
* भाषा के उत्पत्ति के कौन से सिद्धान्त माने जाते हैं,
* भाषा के विकास को विभिन्न कालों में बांटा जाता है,
* वर्तमान समय में हिन्दी भाषा की क्या स्थिति है,
* भाषा के रूप में परिवर्तन क्यों आता हैं, और
* आज हिन्दी भाषा किन रूपों में प्रचलित हैं।

1.1.1 प्रस्तावना :

भाषा मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण अंग है। व्यक्ति के जीवन में भाषा के उपयोग की अत्यधिक आवश्यकता है। मनुष्य मूल रूप से सामाजिक प्राणी है। उसके सामाजिक जीवन का मुख्य आधार भाषा ही है। भाषा के अभाव में मनुष्य के सामाजिक जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। मानव सभ्यता का विकास अनुभवों के आदान–प्रदान पर निर्भर करता है। अनुभवों का विनिमय दो प्रकार से होता है – एक अनुकरण द्वारा और दूसरा भाषा के माध्यम से। भावों और विचारों का अनुकरण केवल भाषा द्वारा सम्भव होता है। वस्तुतः मानव–सभ्यता का वर्तमान स्वरूप मुख्य रूप से मनुष्य की भाषा–शक्ति का परिणाम है। भाषा एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एक–दूसरे से विचार–विनिमय करते हैं अथवा अपने भावों को व्यक्त करते हैं। भाषा विचाराभिव्यक्ति का वह साधन है जिसमें ध्वनियों का व्यवहार किया जाता है। मानव के मुख से निकली प्रत्येक ध्वनि भाषा नहीं कही जा सकती केवल सार्थक एवं शब्द निर्माण में समर्थ ध्वनियां ही भाषा की परिधि में आती है।

1.1.2 भाषा का उद्‌भव :

भाषा से हमें भौतिक जगत् को जानने, अन्य मनुष्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करने और अपने विचारों तथा भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायता मिलती है। इसलिए ऐसा माना जाता है कि भाषा बाह्य जगत् में मनुष्य की गतिविधियों के लिए आवश्यक साधन है। भाषा हमारे मस्तिष्क के अन्दर उत्पन्न होने वाले शब्दों की एक अविछिन्न धारा प्रतीत होती है। यह शब्द प्रायः बोली और लेखन के रूप में हमारे मुख से बाहर निकलते हैं या आंतरिक भाषा और विचारों के रूप में हमारे अन्दर तंरगायित होते रहते हैं। विभिन्न विद्वानों ने भाषा की इस रहस्यमय प्रक्रिया के जन्म के विषय में जाने का प्रयास किया है किन्तु इस विषय में अभी तक कुछ भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। फिर भी एक बात अवश्य मानी जा सकती है कि भाषा यदि शब्दों की धारा है तो अन्य धाराओं की भांति इसका भी कोई आदि और अन्त होना चाहिए। भाषा को समग्र रूप में देखने के प्रयत्न में यह बात निश्चित रूप से ठीक है कि भाषा ध्वन्यात्मक संकेत–प्रणाली है जिसका प्रयोग किसी समाज के मनुष्य विचारों के आदान–प्रदान के साधन के रूप में करते हैं। साधन उस पदार्थ को कहते हैं जिसका प्रयोग साधक अपने–अपने कार्य की सिद्धि के लिए करता है। इस दृष्टि से भाषा मनुष्य के लिए ऐसा साधन नहीं है जिस पर पूर्ण नियन्त्रण हो। वक्ता के मुँह से जो शब्द निकलते हैं उन पर उसका नियंत्रण अवश्य होता है किन्तु मुख से बाहर आने वाली भाषा ही मनुष्य की भाषा का एक मात्र रूप नहीं। व्यक्ति के मस्तिष्क में जो विचार निरन्तर उठते रहते हैं वह भी भाषा का ही एक रूप होते है। आधुनिक शिक्षित मनुष्य की अधिकांश भाषा का प्रयोग उसके अन्दर ही होता है। अपनी सम्पूर्ण रूप में भाषा न तो केवल मुखोच्चरित ध्वनियों की व्यवस्था है और न ही वह केवल विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम है। वास्तव में, हमारी बाह्य और आन्तरिक भाषा हमारे अन्दर उत्पन्न होने वाली शक्ति के विनियोग का ही एक रूप है।

1.1.3 भाषा की उत्पत्ति के सिद्धान्त :

भाषा के उद्‌भव का प्रश्न बड़ा ही आकर्षक किन्तु उलझा हुआ है। भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी अनेक मतो का प्रतिपादन हुआ है। मनुष्य ने कब एवं कैसे भाषा सीखी, इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। फिर भी भाषा के उद्‌भव सम्बन्धी विभिन्न मतो की संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी मतों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

1.1.3.1 श्रद्धा पर आधारित मत - इस सिद्धान्त के अनुसार, ईश्वर ने जैसे सृष्टि के अन्य पदार्थों की रचना की वैसे ही भाषा का सृजन किया। मनुष्य को भाषा का ज्ञान प्रकृति की देन है। धार्मिक विचारों के लोग यह मानते हैं कि उनका धर्मग्रन्थ ही आदि ग्रन्थ है और उनके धर्म ग्रन्थ की भाषा ही आदि भाषा है। यही कारण है कि वेदों में विश्वास रखने वाले वैदिक संस्कृत को आदिभाषा कहते हैं, बाईबल में विश्वास रखने वाले हिब्रू को आदि भाषा कहते हैं और कुरान को आदि ग्रन्थ मानने वाले अरबी को आदि भाषा कहते हैं। इस मत का आधार केवल श्रद्धा या विश्वास है, तर्क नहीं।

अन्य अनुमानित मत - इसमें छः प्रकार के मत आते हैं

(क) संकेत सिद्धान्त - इस मत के अनुसार, आरम्भ में, मनुष्य संकेतों से बात करता था। धीरे–धीरे उसने विभिन्न पदार्थों एवं क्रियाओं के लिए ध्वनि संकेत बनाने शुरू किए और इस प्रकार भाषा का जन्म हुआ। इस बारे में कहा जा सकता है कि मनुष्य की भाषा ही नहीं थी तो ध्वनि संकेत कैसे बने।

(ख) धातु सिद्धान्त - इस मत के अनुसार, आरम्भ में, प्रत्येक वस्तु से एक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। आदि मानव ने इस ध्वनि के आधार पर ही शब्दों का निर्माण किया। केवल धातु से निकली ध्वनि से भाषा का निर्माण असंभव–सा प्रतीत होता है।

(ग) संगीत सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार, आदि मानव अपने खाली समय में मन बहलाव के लिए गुनगुनाता होगा जिससे भाषा का उद्‌भव हुआ।

(घ) अनुकरण सिद्धान्त - इसके अनुसार मनुष्य अपने इर्द–गिर्द होने वाले पशु–पक्षियों की या प्राकृतिक पदार्थों की ध्वनियों से अनुकरण द्वारा भाषा सीखता रहा और नए शब्दों का निर्माण होता रहा।

(ङ) भावाभिव्यक्ति सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार, भावों की तीव्रता के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से अनायास ही कुछ ध्वनियां निकल पड़ी होंगी। इन ध्वनियों का उस भाव विशेष से सम्पर्क हो गया होगा जिनसे आगे चलकर भाषा का विकास होता गया।

(च) श्रम निवारण मत - इस सिद्धान्त के अनुसार, श्रम की थकान दूर करने के लिए ध्वनियों का स्वाभाविक उच्चारण करते हुए भाषा का विकास हुआ। यह सभी मत अनुमानित एवं केवल अटकल ही प्रतीत होते हैं।

1.1.3.2 विकासवादी सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन प्रकार के मत दिए हैं :

(क) इंगित सिद्धान्त - इनके अनुसार, पहले हर्ष, शोक आदि भाव व्यंजक ध्वनियों का निर्माण हुआ। फिर अनुकरणात्मक ध्वनियों की रचना हुई। धीरे–धीरे शरीर की विभिन्न क्रियाओं एवं संकेतों की अनुकरणात्मक ध्वनियों का निर्माण हुआ और फिर सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के शब्द बने।

(ख) सम्पर्क सिद्धान्त - इस सिद्धान्त का आधार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। मनुष्य में सम्पर्क स्थापित करने की सहज प्रवृत्ति पायी जाती है। ज्यों–ज्यों सम्पर्क की आवश्यकता बढ़ती गई उसके अनुरूप ध्वनियों का जन्म एवं विकास होता गया।

(ग) मिश्रित सिद्धान्त - यह सिद्धान्त उपरोक्त सभी सिद्धान्तों का मिश्रित रूप है। यह सभी सिद्धान्त भाषा के उद्‌भव किसी विभिन्न आधारों का समर्थन करते है। इस सिद्धान्त के अनुसार, भाषा आरम्भ में इंगित और ध्वनि दोनों पर आधारित थी। विभिन्न ध्वनि–समूह से आगे चलकर भाषा का विकास हुआ। इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है – "जितनी खोजे हुई हैं, उनके प्रकाश में केवल इतना ही कहना सम्भव है कि भाषा की उत्पत्ति भावाभिव्यंजक, अनुकरणात्मक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से हुई और इसमें इंगित सिद्धान्त, संगीत सिद्धान्त एवं सम्पर्क सिद्धान्त से भी सहायता मिली।"

हिन्दी भाषा के उद्‌भव एवं विकास के विषय में अध्ययन करने से पहले इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि संसार में लगभग तीन हज़ार भाषाएं बोली जाती है। इसमें बहुत–सी भाषाएं पारिवारिक रूप से आपस में सम्बन्धित है। ये भाषाएं मूल रूप से ही किसी एक ही भाषा से निकली हुई होती हैं। विभिन्न भाषा–विज्ञानियों ने समानता के आधार पर भाषाओं को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके उनके परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन किया है।

1.1.4 हिन्दी भाषा का विकास :

'हिन्दी' शब्द के इतिहास की एक सुदीर्घ परम्परा है जो समयानुसार विभिन्न रूप धारण करती रही है। अपने आरंभिक काल में यह हिन्दवी, हिन्दुवी, हिन्दुई आदि विभिन्न नामों से जानी जाती थी। हिन्दवी या हिन्दी शब्द फारसी भाषा का यह शब्द है जिसका तात्पर्य है 'हिन्दी का अर्थ'। फारसी ग्रंथों

में यह शब्द हिन्द देशवासी और हिन्दु देश की भाषा, दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्दी या भारत में बोली जाने वाली किसी आर्य या अनार्य भाषा के लिए हो सकता है।

अपने व्यावहारिक रूप में, हिन्दी उस बड़े भू–भाग की भाषा है जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर–पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की पूर्वी सीमा तक पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रामपुर तथा दक्षिण–पश्चिम में खंडवा तक जाती है। इस विस्तृत क्षेत्र में यह साहित्य, पत्र–पत्रिकाओं, शिक्षा तथा बोलचाल की भाषा है। इस दृष्टि से बिहारी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, राजस्थानी, मारवाड़ी, मेवाती। पूर्वी हिन्दी, अवधी, बघेली, छतीसगढ़ी और पहाड़ी आदि भाषाएं हिन्दी की विभाषाएं कही जा सकती है।

अपने विस्तृत अर्थ में, हिन्दी पूरे भारतवर्ष की भाषा है। इससे कम व्यापक अर्थ में यह उत्तर भारत की भाषा है। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में इसका विशेष प्रभाव देखा जाता है क्योंकि यहां हिन्दी प्रादेशिक भाषा भी है और साहित्यिक भाषा भी। इस शब्द का सीमित प्रयोग राष्ट्रभाषा के रूप में होता है। हिन्दी पूरे भारत वर्ष की भाषा होने के बावजूद राष्ट्र–भाषा के तौर पर पूरे देश में लागू नहीं होती क्योंकि यहां विभिन्न प्रदेशों की विभिन्न भाषाओं का महत्त्व है।

हिन्दी भाषा का विकास - विकास की दृष्टि से हिन्दी भाषा की तीन अवस्थाएं स्वीकार की जाती है –

1.1.4.1 आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई. तक) – यह युग राजनीतिक दृष्टि से अशान्ति एवं उथल–पुथल का युग था जो किसी नई भाषा के विकास के प्रतिकूल था। इस काल की भाषा के तीन रूप मिलते हैं –

(क) डिंगल शैली - इसमें दिल्ली तथा राजस्थान के राजपूत राजाओं के आश्रित कवि, चारण तथा भाटों की भाषा आती है। डिंगल राजस्थान तथा दिल्ली के आस–पास की जनसामान्य की भाषा है, जिसे वीर रसमय बनाने के लिए अपभ्रंश का प्रयोग भी किया गया है। आदिकाल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो', 'बीसलदेव रासो', 'खुमान रासो' आदि की भाषा भी डिंगल ही है।

(ख) साधु सन्तों की शैली - इस शैली का आरम्भ चौरासी सिद्धों तथा नाथ पंथियों से होता है। इनकी भाषा पर अपभ्रंश भाषा का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। इस शैली का प्रयोग गोरखनाथ तथा रामानन्द की वाणी में हुआ। सन्त कबीरदास और गुरुनानक देव जी ने भी अपने भक्ति–काव्य में इसी का प्रयोग किया। ये साधु–सन्त देश के विभिन्न भागों में घूमते थे इसलिए इनकी भाषा में एकरूपता होना असंभव है। अलग–अलग स्थानों से प्रभावित होने के कारण इन निर्गुण सन्तों की भाषा में अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग कम होता गया और हिन्दी का स्वरूप निखरता रहा।

(ग) असाम्प्रदायिक कवियों की शैली - इसमें अमीर खुसरो तथा मैथिली कवि विद्यापति की भाषा आती है। इसमें न अपभ्रंश का प्रभाव है और न ही उस समय में प्रचलित अन्य बोलियों का अनावश्यक मिश्रण है। यह खड़ी बोली हिन्दी के आरम्भिक काल की भाषा है। इन तीन शैलियों के समय में अपभ्रंश की प्रायः समस्त ध्वनियां हिन्दी में आ गई। इस काल की भाषा में अरबी, फारसी, तुर्की आदि के शब्द भी भाषा से जुड़ने लगे जो मुसलमानों के साथ बढ़ते हुए सम्पर्क का नतीजा था। इस समय की प्रमुख साहित्यिक रचनाएं है – चन्दरबरदयी का पृथ्वीराज रासो, नरपतिनाल्ह, विद्यापति की रचनाएं, ख्वाजा बंदानेवाज, ख्वाजा मसऊद और अमीर खुसरो की रचनाएं और कबीर का वाणी आदि।

1.1.4.2 मध्यकाल - (1500 ई. से 1800 ई. तक) भारतीय इतिहास में यह काल मुगलों के शासन का काल था। इस समय देश में राजनीतिक स्थिरता, व्यवस्था एवं शांति का वातावरण था। जिसके फलस्वरूप देशी भाषाओं को विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय पर्याप्त मात्रा में पद्यात्मक साहित्य का सृजन हुआ। इस काल में भाषा के दो रूप विकसित हुए थे, ब्रज और अवधी। सूफी कवि कुतुबन, मंझन, जायसी एवं रामभक्त कवि तुलसीदास ने अवधी के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अवधी–भाषा को साहित्यिक भाषा देने का श्रेय तुलसीदास को है। कृष्णभक्ति आंदोलन का केन्द्र ब्रज–प्रदेश था। इसलिए ब्रजभाषा काव्य–भाषा बन गई। कुछ मुसलमान कवियों, रसखान तथा रहीम ने भी ब्रजभाषा में कविता की। दक्षिण में मुसलमान कवियों ने खड़ी बोली में काव्य रचनाएं कीं जिसमें अरबी–फारसी के शब्दों का बाहुल्य था। इस काल में एक ओर रीतिकाल कवि ब्रजभाषा में श्रृंगारी रचनाएं कर रहे थे और दूसरी तरफ मुगल दरबारों में बादशाहों की छत्रछाया में उर्दू नामक कृत्रिम शैली जन्म ले रही थी। वह शैली धीरे–धीरे साहित्यिक रूप धारण कर गई, जिसका एक अन्य नाम 'दक्खिनी' भी था। इसके मुख्य साहित्यकार कुली कुतुबशाह नुसरती, वजही और वली आदि थे। ध्वनियों की दृष्टि से इस काल की भाषा में क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का प्रयोग आरम्भ हुआ। मुगल शासकों की दरबारी भाषा फारसी होने के कारण फारसी का प्रचार–प्रसार और फलस्वरूप हज़ारों की संख्या में फारसी, अरबी और तुर्की के शब्द हिन्दी में आए।

1.1.4.3 आधुनिक काल - (ई. 1800 से वर्तमान तक) इस काल के आरम्भ में पहले भारत पर अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो चुकी थी जिसके परिणामस्वरूप भारत में पश्चिमी सभ्यता, पश्चिमी साहित्य और पश्चिमी भाषाओं की आगमन हुआ। अंग्रेजों ने एक ओर भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार शुरू किया और दूसरी ओर कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना करके हिन्दी और उर्दू के विकास का कार्य आरम्भ किया। कर्मचारियों को हिन्दी सिखाने तथा अपने धर्म–प्रचार के लिए उन्हें गद्य की आवश्यकता थी। गद्य के लिए उन्होंने ब्रज की अपेक्षा खड़ी बोली को उपयुक्त समझा। इस प्रकार खड़ी बोली को विकसित होने का अवसर मिला। अंग्रेजों ने खड़ी बोली को 'हिन्दुस्तानी' का नाम दिया और इसमें पुस्तकें छपवाई। यह हिन्दी संस्कृत शब्दावली की ओर झुक गई। इसका प्रथम कारण हिन्दी का पारिभाषिक शब्दावली के लिए संस्कृत का मुखापेक्षी होना है। दूसरी बात यह है कि संस्कृत से हिन्दी का माता–पुत्री का संबंध है और दोनों की लिपि भी एक है। अंग्रेजी शासन में हिन्दुओं में आत्मगौरव का भाव भरने के लिए कुछ महापुरुषों ने उनका ध्यान प्राचीन संस्कृति की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। संस्कृत का पठन–पाठन और अध्ययन बढ़ा और हिन्दी में संस्कृत के शब्द स्वाभाविक रूप से आने लगे।

आधुनिक काल के आरम्भ में गद्य की भाषा खड़ी बोली रही परन्तु पद्य की भाषा ब्रज ही बनी रही। आज यह पद्य की भाषा भी है और शिक्षा प्रशासन एवं शिष्ट समाज के सामाजिक वार्तालाप की भाषा भी है। इसे स्वतन्त्र भारत की 'राष्ट्रभाषा' का गौरवमय पद प्राप्त हो चुका है। इस काल की हिन्दी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों की संख्या बहुत बढ़ गई है। ज्ञान–विज्ञान के लिए निर्मित नए पारिभाषिक शब्दों का मूलाधार भी संस्कृत की शब्दावली है। हिन्दी ने अंग्रेजी भाषा के शब्दों को भी पर्याप्त मात्रा में ग्रहण किया है। वास्तव में, हिन्दी किसी प्रदेश विशेष की भाषा नहीं है। यह एक भाषा न होकर एक भाषा–समूह है जिसमें अनेक भाषाएं, उपभाषाएं, बोलियां तथा उप–बोलियां सम्मिलित है। हिन्दी के विभिन्न रूपों में परिनिष्ठित हिन्दी को राष्ट्रभाषा की संज्ञा दी गई है। उर्दू इस हिन्दी की एक शैली का नाम है जिसके हिन्दवी, दक्खिनी, रेख्ता तथा रेख्ती आदि विभिन्न नाम है। हिन्दी और उर्दू के मध्य की भाषा को 'हिन्दुस्तानी' कहते हैं। हिन्दी भाषा की सहभाषाएं आपस में निकट संबंध रखती हैं। उनमें पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी का विशेष स्थान है। पूर्वी

हिन्दी की तीन मुख्य बोलियां हैं – अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। पश्चिमी हिन्दी की भी पाँच बोलियां हैं – ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली, खड़ी बोली और बांगरू।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग आज तीन अर्थों में हो रहा है (क) 'हिन्दी' शब्द अपने विस्तृत अर्थ में हिन्दी प्रदेश में बोली जाने वाली 17 बोलियों का द्योतक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी का प्रयोग इसी अर्थ में होता है जहां ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली तथा खड़ी बोली आदि सभी भाषाओं में लिखित साहित्य का विवेचन हिन्दी भाषा के अन्तर्गत किया जाता है। (ख) भाषा विज्ञान के अनुसार, पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी दोनों की हिन्दी भाषा है। इन दोनों की आठ बोलियों का सामूहिक नाम हिन्दी ही है। (ग) 'हिन्दी' शब्द का संकुचित अर्थ है – खड़ी बोली हिन्दी जो हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है, पूरे देश की राजभाषा है। यह हिन्दी प्रदेशों में शिक्षा का माध्यम है और इसे ही परिनिष्ठित हिन्दी, साहित्यिक हिन्दी और मानक हिन्दी कहते हैं। आधुनिक काल राजनीति का काल है। आज भारतीय राजनीति के केन्द्र दिल्ली की भाषा खड़ी बोली एक मात्र हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक भाषा बन गई है। यह खड़ी बोली हिन्दी हमारी राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा भी है।

भाषा शास्त्रीय दृष्टि से हिन्दी की कुछ विशेषताएं महत्वपूर्ण हैं – (क) विश्लिष्ट रूप–संस्कृत भाषा में संश्लिष्ट रूपों की बहुलता पाई जाती है। हिन्दी भाषा में यह पद्धति समाप्त हो गई है। जैसे 'गच्छामि' क्रियापद में संस्कृत में, वर्तमान काल, उत्तम पुरुष तथा एकवचन आदि व्याकरणिक सामग्री अन्तर्निहित है। पर हिन्दी में इसे सीधे ही 'मैं जाता हूं' लिखा जाता है। (ख) आधुनिक आर्य–भाषाओं का शब्दकोष मूलतः संस्कृत के शब्द भंडार पर निर्भर करता है। हिन्दी भाषा में एक भी ऐसा वाक्य नहीं मिलता जिसमें संस्कृत का एक भी शब्द न हो। संस्कृत मूलक हिन्दी भाषा की महत्वपूर्ण विशिष्टताएँ हैं। (ग) अपने व्यावहारिक रूप में अर्थात् दैनिक बोलचाल की भाषा में भी हिन्दी संस्कृत से विकसित तद्भव शब्दों को ही स्वीकार करती है। हिन्द–संस्कृत मूलक तद्भव, क्रियापदों, सर्वनाम–रूपों, पर–सर्गो तथा संज्ञा शब्दों का प्रयोग करती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अधिकतर विद्धान् हिन्दी का जन्म दसवीं शताब्दी से मानते हैं। कुछ प्रमाण ऐसे भी हैं जिनमें हिन्दी का प्रचलन सातवीं शताब्दी में भी मिलता है। 'कुवलय मालाकथा' के ग्रन्थकार चिहांद्योतन अपभ्रंश के कवि हेमचंद द्वारा लिखित दो पंक्तियों को इसके प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं –

'भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि हमारा कन्तु,
लज्जेजं तु वयंसिअइ जइ 'भग्गा' गुरु एन्तु।'

इस दोहे में आए 'हुआ', 'मारिया', 'हमारा' आदि शब्द खड़ी बोली के हैं। इसी तरह महाराष्ट्र के भक्त कवि नामदेव (स. 1192) ने भी अपनी कविताओं में इसी बोली का प्रयोग किया –

'पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी,
लेकर ढ़ेगा टंकरी तोरी लांगत–लांगत जाती थी।'

यह खड़ी बोली का ही रूप है, परन्तु परिमार्जित रूप नहीं है। अमीर खुसरो के समय से ही हिन्दी अपने परिष्कृत रूप में खड़ी बोली के निकट आने लगी थी। कबीरदास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से खड़ी बोली को आगे बढ़ाया किन्तु भक्तिकाल में धर्म और उपासना के प्रभाव में ब्रज और अवधी भाषा का बोलबाला बढ़ा और खड़ी बोली का विकास अवरूद्ध हो गया। अकबर के शासन काल में गंग भाट ने खड़ी बोली में 'चन्द छंद बरनन की महिमा' नामक गद्य रचना की। इतना निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी जनसाधारण की बोलचाल की भाषा के रूप में प्रारम्भ से ही प्रयोग की जा रही है। हिन्दू प्रजा और मुगल शासकों के आदान–प्रदान के माध्यम स्वरूप इसी भाषा का प्रयोग होता रहा। अपनी प्रजा के निकट आने के

लिए मुसलमान शासकों तथा लेखकों ने इस भाषा के प्रचार–प्रसार हेतु महत्वपूर्ण कार्य किए। खड़ी बोली हिन्दी अपने विभिन्न स्वरूपों एवं नामों से भारतीय भूमि पर सहस्त्रों वर्षों से फूलती फलती आ रही है। यह बात अलग है कि आरंभिक काल में संस्कृत के साम्राज्य के समक्ष यह जनभाषा विकसित नहीं हो सकी। कालान्तर में प्राकृत उवं अपभ्रंश ने इसका आश्रय लिया ताकि जनता से निकट सम्पर्क स्थापित हो सके। इन धर्म–प्रचारकों से सहयोग पाकर हिन्दी भाषा अधिक व्यापक होती गई। ऐतिहासिक उत्थान–पतन से अपना पालन–पोषण एवं विकास करते हुए हिन्दी निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती रही है। विभिन्न भारतीय तथा विदेशी भाषाओं से अपने शब्दकोष एवं प्रचलन को सुसंस्कृत तथा परिष्कृत करते हुए आज राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है।

1.1.5 बोध प्रश्न :

1. भाषा की उत्पत्ति के सिद्धान्तों पर विचार करें।
2. हिन्दी भाषा के विकास के मुख्य पड़ाव कौन से हैं?
3. हिन्दी के विभिन्न रूप कौन से हैं?

पाठ संख्या 1.2

भाषा की विशेषताएं और परिवर्तन के कारण

पाठ की रूपरेखा

1.2.1 भाषा की विशेषताएं
1.2.2 भाषा के परिवर्तन के कारण
1.2.3 सारांश
1.2.4 बोध प्रश्न।

1.2.1 भाषा की विशेषताएं :

भाषा सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है। भाषा द्वारा ही मनुष्य अपने भावों एवं विचारों को दूसरों तक व्यक्त करने में सक्षम होता है। वास्तव में, भाषा वागिन्द्रियों (बोलने वाली इन्द्रियों) से निःसृत यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से एक भाषा–भाषी समुदाय परस्पर विचार–विनिमय करता है। यद्यपि भाषा के अतिरिक्त दूसरे ग़ैर–भाषिक संकेतों से भी भावों की अभिव्यक्ति की जा सकती है। जैसे, आँखों के द्वारा, हाथ के इशारों से, सिर हिलाकर इत्यादि। इसी प्रकार सड़क पर पीली, लाल और हरी बत्ती भी देखकर वाहनों का चलना और रुकना, सिग्नल देखकर रेलगाड़ी का आगे बढ़ना अथवा रुकना भी संप्रेषण है किन्तु इन माध्यमों की सीमाएं हैं। भाषा विज्ञान के अंतर्गत इन ग़ैर–भाषिक संकेतों का अध्ययन नहीं किया जाता अपितु बोलने वाली इन्द्रियों से उच्चरित भाषा का ही अध्ययन किया जाता है। मनुष्य के भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम से भाषा की कुछ मूलभूत विशेषताएं एवं प्रवृत्तियां हैं जो लगभग सभी भाषाओं में समान रूप से पायी जाती है अर्थात् भाषा के निम्नांकित गुण किसी भाषा विशेष के नहीं है अपितु भाषा के हैं –

1. **भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है** - जिस प्रकार व्यक्ति को बिना प्रयास पैतृक सम्पत्ति मिल जाती है और वह धनवान् बन जाता है, भाषा उस प्रकार की पैतृक सम्पत्ति नहीं है। पिता की भाषा पुत्र को पैतृक सम्पत्ति की भांति अनायास ही प्राप्त नहीं होती। अगर पिता दस भाषाओं का ज्ञाता है तो आवश्यक नहीं कि पुत्र को उन सभी भाषाओं पर अधिकार हो। उदाहरण के लिए, यदि किसी भारतीय बच्चे को एक दो वर्ष की अवस्था में ही विदेश भेज दिया जाए तो वह हिन्दी या हिन्दुस्तानी आदि न तो समझ सकेगा और न बोल सकेगा अपितु इसके स्थान पर उसे देश विशेष की भाषा ही उसकी मातृभाषा होगी। अगर भाषा पैतृक सम्पत्ति होती हो भारतीय बच्चे को भारत से बाहर रहकर भी बिना प्रयास के वह भाषा समझ में आती अथवा वह उस भाषा को लिख सकता जो उसके पिता की भाषा थी। इसलिए हम कह सकते हैं कि भाषा पैतृक सम्पति नहीं है।
2. **भाषा अर्जित सम्पत्ति है** - भाषा जन्मजात वस्तु नहीं है क्योंकि मनुष्य जिस प्रकार शारीरिक अवयवों को लेकर जन्म लेता है, उस प्रकार भाषा को लेकर जन्म नहीं लेता। अपितु भाषा को वह सीखता है, उसका सर्जन करता है। मनुष्य जानवरों से अपने इसी गुण के कारण विलक्षण और विशिष्ट है क्योंकि मनुष्य में भाषा ग्रहण करने की एवं अर्जन करने की नैसर्गिक (प्राकृतिक) शक्ति होती है। मनुष्य जिस भाषा विशेष के परिवेश में जन्म लेता है और रहता है उसी की भाषा सीख लेता है। भाषा विशेष की

क्षमता लेकर कोई उत्पन्न नहीं होता। किसी विदेशी परिवेश में रहकर भारत में जन्मा बच्चा भी वहां की भाषा उसी प्रकार अर्जित कर लेगा जिस प्रकार उस देश विशेष में जन्मा बच्चा। दूसरे शब्दों में, भारत में जन्मा बच्चा फ्रांस में रहकर फ्रैंच, जर्मनी में रहकर जर्मन इत्यादि भाषाओं को अर्जित कर सकता है। इसलिए भाषा आसपास के परिवेश एवं वातावरण से अर्जित की जाती है। वह पैतृक सम्पत्ति न होकर अर्जित सम्पत्ति है।

3. **भाषा सामाजिक वस्तु है** - भाषा आद्यन्त (आदि से अन्त तक) एक सामाजिक वस्तु है क्योंकि उसकी उत्पत्ति समाज में होती है तथा उसका विकास भी समाज में ही होती है। भाषा क्योंकि पैतृक न होकर अर्जित सम्पत्ति है, इसलिए इस सम्पत्ति का अर्जन भी मनुष्य समाज में रहकर ही करता है। इसका प्रयोग भी वह समाज में रहकर ही करता है। इसलिए आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा द्वारा कहा भी गया है कि भाषा समाज में, समाज के लिए और समाज द्वारा निर्मित होती है। यद्यपि भाषा के अनेक अन्य आधार भी हैं, जैसे भौतिक अथवा साहित्यिक, परन्तु ये भी उसके सामाजिक रूप के ही विभिन्न पक्ष हैं। जहां भौतिक आधार भाषा को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने का कार्य करता है, वहीं साहित्यिक आधार भावों एवं विचारों को। मातृभाषा से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि भाषा की उत्पति माँ से होती है। वास्तव में, भाषा को सिखाने का सर्वप्रथम प्रयास माता द्वारा ही होता है। भाषा जैसी सामाजिक वस्तु को शिशु तक पहुँचाने का काम माता ही निष्पन्न करती है। इसलिए जिस भाषा को माँ सिखाती हैं, वह समाज की ही सम्पत्ति है और सामाजिकता का निर्वाह करने के लिए ही भाषा की उत्पत्ति भी हुई है।

4. **भाषा संप्रेषण का सशक्त और मौखिक साधन है** - यह निर्विवाद सत्य है कि भाषा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त और मौखिक साधन है। भाषा ही वह संपूर्ण माध्यम है जो किसी भाषा–भाषी समुदाय के बीच परस्पर विचार विनिमय करता है। भाव संप्रेषण के आंगिक और सांकेतिक साधनों के साथ–साथ लिखित साधन भी अपूर्णता से युक्त है जबकि भाषा का मौखिक अथवा उच्चरित रूप भावों को अधिक स्पष्टता से व्यक्त करने में सक्षम है। बोलते समय हम ध्वनियों के आरोह–अवरोह, बलाघात आदि द्वारा जो प्रभाव उत्पन्न कर सकते है वह लिखित भाषा द्वारा नहीं हो पाता। इसलिए कहा जा सकता है कि भाषा संप्रेषण का सशक्त एवं मौखिक रूप है जिसमें उच्चरित भाषा पर बल दिया जाता है।

5. **भाषा परम्परागत है** - मनुष्य की तरह भाषा की धारा भी निरन्तर प्रवाहमान है। जैसे नदी अपने उद्‌गम से लेकर समुद्र पर्यन्त निरन्तर प्रवाहमान रहती है, उसी प्रकार जब से भाषा का आरंभ हुआ है तब से आज तक वह अविच्छिन्न गति से आगे बढ़ रही है और मानव की सत्ता के साथ–साथ भाषा की सत्ता भी बनी रहेगी। भाषा की यह गतिशीलता समाज में ही रहती है, व्यक्ति अर्जित करता है, उसमें किंचित परिवर्तन–परिवर्धन भी कर सकता है किन्तु भाषा को न तो वह उत्पन्न कर सकता है और न ही उसे खत्म। मनुष्य परम्परा से चली आ रही भाषा का ही अर्जन करता है। इसलिए भाषा को जन्म देने वाले समाज और परम्परा ही हैं।

6. **भाषा अनुकरण द्वारा सीखी जाती है** - अनुकरण मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। भाषा अर्जन के क्षेत्र में उसकी यही प्रवृत्ति उसे सरल से सरलतम और जटिल से जटिलतम ध्वनियों के उच्चारण में समर्थ बना देती है। शिशु के शारीरिक विकास के लिए जैसे दूध आदि की आवश्यकता है उसी प्रकार उसके बौद्धिक विकास के लिए भाषा की आवश्यकता है। छोटा बच्चा आसपास के बड़े लोगों को ध्वनियों का जैसा प्रयोग करता देखता है वैसा ही स्वयं अनुकरण करने का प्रयास करता है। जैसे

आरंभ में बच्चा रोटी को लोटी रुपया को लुपया, पानी को मम इत्यादि कहता है किन्तु धीरे–धीरे अपनी अन्तर्निहित सहज अनुकरण शक्ति द्वारा इन ध्वनियों के सभी उच्चारण के साथ–साथ जटिलतम ध्वनियों का भी उच्चारण करने लगता है। किन्तु इस छोटे शिशु को जंगल में छोड़ दिया जाए और पूर्ण देखरेख में उसके आसपास कोई मनुष्य ध्वनि न बोली जाए तो हम पायेंगे कि कुछ वर्षों बाद वह केवल उन्हीं ध्वनियों के उच्चारण में सक्षम होगा जो उसके आसपास बोली जाती थी चाहे वह भेड़िये की हो या कुत्ते की। इसलिए भाषा अर्जन का सारा श्रेय सामाजिक व्यवहार को है। भाषा सीखने की प्रक्रिया में जो अनुकरण है वही समाज की दृष्टि से व्यवहार है।

7. **भाषा चिर परिवर्तनशील है** - परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। इसलिए भाषा भी चिर परिवर्तनशल है। किसी भी देश और युग की भाषा ऐसी नहीं रही जो परिवर्तित न हुई हो। यह परिवर्तन विकास और ह्रास दोनों ही दिशाओं में हो सकता है। अनुकरण पर आधारित होने के कारण दो व्यक्तियों की भाषा बिल्कुल एक सी नहीं हो सकती। अनुकरण की अपूर्णता के पीछे कई तत्व क्रियाशील होते हैं। ध्वनि, शब्द, व्याकरण, अर्थ – इनमें कोई भी क्षेत्र अपरिवर्तित नहीं रहता। बिन्दु से बूँद, शाक से साग, मेघ से मेह में ध्वनि परिवर्तन स्पष्ट है। कुछ शब्दों का स्थान नए शब्द ले लेते हैं। कुछ शब्द नए अर्थों में प्रयुक्त होने आरंभ हो जाते है। जैसे 'हरिजन' शब्द का अर्थ आज वह नहीं है जो पहले हुआ करता था। इसलिए भाषा का स्वरूप क्षण–क्षण बदलता है।

8. **भाषा पहले उच्चरित रूप में परिवर्तित होती है** - भाषा के उच्चरित और लिखित दोनों रूपों में परिवर्तन होता है किन्तु यह परिवर्तन उच्चरित रूप में पहले होता है और लिखित रूप में बाद में। क्योंकि लिखित रूप उच्चरित रूप पर ही आधारित होता है। किन्तु कई बार भाषा का उच्चारण रूप तो परिवर्तित हो जाता है किन्तु लिखित रूप परिवर्तित नहीं होता इसलिए बहुत सी भाषाओं में उच्चारण (बोलने) और वर्तनी (लिखने) में भेद होता है। अंग्रेज़ी के बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनकी वर्तनी वही है जिस रूप में आज से शताब्दियों पहले इसका उच्चारण होता था। जैसे Though, Subtle आदि शब्दों का उच्चारण आज बहुत बदल गया है, किन्तु इनका लिखित रूप वही है जो उच्चारण में आज से शताब्दियों पूर्व था।

9. **प्रत्येक भाषा की अलग व्यवस्था होती है** - प्रत्येक भाषा की बनावट, ढांचा और व्यवस्था दूसरी भाषा से भिन्न होती है। अपनी प्रकृति में भी एक भाषा दूसरी से भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, जैसे हिन्दी में दो लिंग हैं, संस्कृत और गुजराती में तीन–तीन लिंग हैं। हिन्दी में दो वचन है, संस्कृत में तीन। हिन्दी में क्रिया लिंग के अनुसार बदलती है जबकि अंग्रेजी में नहीं। जैसे राम खाना खाता है, सीता खाना खाती है। जबकि अंग्रेजी में Ram eats food, Sita eats food. कुछ भाषाओं में कुछ ध्वनियों का संयोग संभव होता है, कुछ में नहीं। कुछ भाषाओं में कोई भी शब्द व्यंजनात हो ही नहीं सकता (जैसे जापानी भाषा) तथा संस्कृत और हिन्दी में शब्द व्यंजनांत होते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक भाषा की अलग व्यवस्था एवं अलग ढांचा होता है।

10. **भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं होता** - भाषा निरन्तर प्रयोग में रहती है, इसलिए मृत भाषाओं को छोड़कर जीवित भाषाओं का कोई अंतिम स्वरूप नहीं होता। भाषा की परिवर्तनशीलता ही उसके इस गुण का कारण है। किसी भी वस्तु की पूर्णता अथवा स्थिरता उसकी समाप्ति की द्योतक होती है किन्तु उसकी गतिशीलता जिन्दगी की। भाषा सामाजिक व्यवहार के लिए मनुष्य द्वारा नित्य प्रति प्रयुक्त होने के कारण नित्य गतिशील, परिवर्तनशील है।

11. **भाषा की धारा स्वभावतः कठिनता से सरलता की ओर जाती है** - मनुष्य स्वभावतः सुगमता प्रिय है। इसलिए वह अपने प्रयोग में आने वाली प्रत्येक वस्तु को सरल ढंग से प्रयुक्त करना चाहता है। उसकी यह प्रवृत्ति भाषा के क्षेत्र में भी दिखाई देती है। इसे प्रयत्न लाघव अथवा मुख–सुख भी कहा जा सकता है। इसी मुख सौहार्द के कारण पर 'मातृश्वसा' को मौसी कहता है तो कभी 'जितेन्द्र' को जतिन्दर। पुरानी भाषाओं जैसे संस्कृत इत्यादि में रूपों का आधिक्य था परन्तु आधुनिक भाषाओं में रूप अपेक्षाकृत कम हो गये है। यद्यपि हिन्दी भाषा के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि कुछ विद्वान् भले ही ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करें जिनसे आभास होता है कि हिन्दी कठिनता की ओर बढ़ रही है किन्तु हिन्दी ने तो इतना सौहार्द दिखाया है कि जहां जिस रूप में उसके प्रयोग में अधिक सहजता आ गई है, उसने उस रूप को अपना लिया है।

12. **भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढ़ता से प्रौढ़ता की ओर जाती है** - भाषा अपने आरंभिक रूप में सूक्ष्म भावों की गहराई से अभिव्यक्ति करने में सक्षम नहीं थी किन्तु धीरे–धीरे भाषा का विकास होता गया, वह अप्रौढ़ से प्रौढ़ और प्रौढ़ से प्रौढ़तम होती जा रही है क्योंकि जो भाषा नित्य प्रयोग में रहती है उसमें सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए नए–नए शब्द गठित होते रहते हैं। भाषा में यह प्रौढ़ता उसके प्रयोग पर निर्भर करती है।

13. **भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर बढ़ जाती है** - संयोग का अर्थ है 'मिली होने की स्थिति' और वियोग का अर्थ है 'अलग होने की स्थिति'। विद्वानों का मत है कि कि भाषा संयोग स्थिति से वियोग स्थिति की ओर बढ़ती है। जैसे–जैसे भाषा प्रयोग में आती जाती है वैसे–वैसे उसके रूप और विभक्तियां जो उसके साथ जुड़े होते हैं। धीरे–धीरे अलग होने आरंभ हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे संस्कृत में संयुक्त रूप 'गच्छति' इत्यादि चलते हैं, पर हिन्दी में 'जाता है' विभक्त रूप का प्रयोग किया जाता है।

14. **भाषा सामाजिक दृष्टि से स्तरित होती है** - भाषा चूँकि समाज में ही जन्म लेती है और समाज द्वारा ही परिचालित होती है इसलिए सामाजिक स्तर–भेद होने से भाषा में भी भेद आ जाता है। वह स्तर–भेद अनेक कारणों से होता है जिनमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, शैक्षिक और व्यावसायिक कारण प्रमुख है। एक दार्शनिक की भाषा वही नहीं होगी जो एक कुली की है। फिर हर पेशे के लोगों का अपना–अपना शब्द–भण्डार होता है। वकील की भाषा अलग होगी, व्यापारी की अलग। शिक्षित व्यक्ति भाषा के उच्चारण में जितना सतर्क होगा उतना अशिक्षित व्यक्ति नहीं। इस प्रकार, भाषा लगभग है सामाजिक दृष्टि से विभिन्न स्तरों में बंटी होती है।

15. **भाषा स्थिरीकरण और मानकीकरण से प्रभावित होती है** - भाषा में दो महत्त्वपूर्ण गुण होते हैं – एक विविधता का, दूसरा एकता का, जिसे क्रमशः परिवर्तन और स्थिरीकरण कहा जा सकता है। परिवर्तन भाषा का आवश्यक अंग है जिससे भाषा को विविधता प्राप्त होती है। इस विविधता के कारण एक युग की भाषा दूसरे युग की भाषा से भिन्न होती है। किन्तु विविधता से इस क्रम पर अगर अंकुश न हो तो भाषा इतनी अधिक परिवर्तित हो जाए कि एक ही पीढ़ी में भाषा समझने मुश्किल हो जाए। भाषा को बोधगम्य बनाए रखने के लिए विविधता के क्रम और गति पर नियन्त्रण आवश्यक है। परिवर्तन भाषा की स्वाभाविक प्रवृति है तो रूढ़ि से चिपके रहना सहज मानवीय प्रवृत्ति। इन दोनों प्रवृत्तियों में टकराहट चलती रहती है जिससे परिवर्तन अथवा विविधता की गति कुछ कम होती है और भाषा को स्थिरता मिलती है। भाषा के लिए यह स्थिरता बहुत आवश्यक है जो उसे परम्परागत साहित्य, समाचार–पत्रों, रेड़ियो, संचार के अन्य साधनों से प्राप्त होती है।

16. **भाषा की भौगोलिक सीमा होती है** - संसार में लगभग तीन हजार के करीब भाषायें बोली जाती हैं। भाषा की यह अनेक रूपता उसके इसी गुण पर निर्भर है कि – "चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर वाणी" प्रत्येक भाषा एक भौगोलिक परिवेश में बंधी होती है। इसलिए एक स्थान की भाषा को दूसरी स्थान की भाषा से चाहे कम ही हो, अन्तर अवश्य होता है।

17. **भाषा सहज और नैसिर्गिक क्रिया है** - भाषा अनुकरण के साथ–साथ बौद्धिक प्रयत्न द्वारा सीखी जाती है। मातृभाषा को अनुकरण द्वारा और अन्य भाषाओं को बौद्धिक प्रयत्न से सीखा जाता है। मातृभाषा का ज्ञान मनुष्य के विकास के साथ–साथ सहज ही हो जाता है जबकि अन्य भाषाओं के अर्जन में बहुत श्रम करना पड़ता है परन्तु एक बार किसी भी भाषा पर अधिकार हो जाने के बाद वह सहज हो जाती है और उसके प्रयोग में मनुष्य को कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

18. **भाषा सर्व-व्यापक है** - भाषा क्योंकि संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम है इसलिए समाज में व्यक्ति–व्यक्ति का संबंध, व्यक्ति–समाज का संबंध भाषा पर ही आधारित है। मनुष्य के आंतरिक और ब्राह्म कार्यकलाप, वैयक्तिक और सामाजिक संबंध, समस्त चिंतन और अनुभव का संसार भाषा द्वारा ही मूर्तित होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परस्पर विचार–विनिमय, भावों के आदान–प्रदान के लिए भाषा से उत्तम कोई माध्यम नहीं है। भाषा ही संप्रेक्षण, अभिव्यक्ति और सूचना इत्यादि प्रकार्यों से युक्त होती है। मनुष्य के भावों की वाहिनी है। इस भाषा के कुछ प्रमुख गुण हैं। भाषा किसी की वैयक्तिक सम्पत्ति न होकर समाज की सम्पत्ति है जिसका अर्जन किया जाता है। भाषा को अनुकरण द्वारा सीखा जाता है जिसके अंतर्गत सामाजिक व्यवहार भी महत्त्वपूर्ण बन जाता है। भाषा कभी एक रूप में नही रहती, बदलती रहती है किन्तु इस परिवर्तन अथवा विविधता को मानकीकरण तथा स्थायीकरण द्वारा स्थिरता प्रदान की जाती हैं। भौगोलिक सीमाओं में बंधी हुई प्रत्येक भाषा स्वयं अपनी व्यवस्था से संचालित होती है। विशेषताओं के आलोक में कहा जा सकता है कि समय के परिवर्तन के साथ–साथ भाषा की विशेषताएं परिवर्तित होती रहती है।

1.2.2 भाषा में परिवर्तन के कारण

मनुष्य को जानवरों की कोटि से पृथक् करने वाले कारणों में से संभवतः भाषा एक ऐसा आधार है जो अन्य सभी आधारों से विशिष्ट एवं विलक्षण है। भाषा की उत्पत्ति एवं विकास से पहले मनुष्य भी अन्य पशुओं की भाँति हर्ष और खेद व्यक्त करने में चेष्टाएं करता होगा। चूँकि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भी अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक बुद्धि सम्पन्न था इसलिए इसकी चेष्टाएं अधिक सारगर्भित होती होंगी। आंगिक चेष्टाओं से भी किसी सीमा तक भावों का द्योतक हो जाता है किन्तु इससे सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति असंभव थी। अंगिक भाषा से वाचिक भाषा तक पहुंचना मानव–इतिहास की बहुत बड़ी उपलब्धि है जिसमें संप्रेषण की सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहन से गहनतम संभावनाएं छिपी हुई हैं। मनुष्य की जिज्ञासामय प्रवृत्ति के कारण ही वाचिक के बाद लिखित भाषा का आविष्कार लिपि के माध्यम से हुआ। लिपि से भी बढ़कर आज यांत्रिक भाषा ने अपने तंत्रजाल से समूची मानव सभ्यता को आच्छादित कर लिया है।

सृष्टि की परिवर्तनशीलता भी भाषा की अपवाद नहीं है। वस्तुतः परिवर्तन का ही नाम उत्पत्ति, विकास या विनाश है। ये तीनों परिवर्तनों के ही विभिन्न रूप हैं। विभिन्न वस्तुओं में परिवर्तन की गति कम अथवा अधिक हो सकती है और इसे वातावरण और परिस्थितियों की विभिन्नता प्रभावित करती है। भाषा भी परिवर्तन के इसी नियम का पालन करती है। आज संसार की कोई भी भाषा उसी रूप में नहीं बोली जाती जिस रूप में आज से हज़ार वर्ष पहले बोली जाती थी। भाषा में परिवर्तन की प्रक्रिया तो प्रतिपल चलती रहती है परन्तु जब परिवर्तन पूंजीभूत हो जाती है तभी पकड़ में आता है और ऐसा कई सौ वर्षों बाद होता है। यदि एक ही पीढ़ी

में वैसा बदलाव होने लगे तो शायद पिता की बात पुत्र न समझ पाये। इसलिए अनवरत परिवर्तित भाषा किसी ठोस बदलाव के लिए बहुत समय लेती है।

भारत में वैदिक युग से लेकर आज तक भाषा कई रूपों में बदल चुकी है। एक ही मूल भाषा से निकली हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, उड़िया, असमी इत्यादि भाषायें स्थान, काल और परिस्थिति के कारण एक दूसरे से बहुत भिन्न है। भाषा में परिवर्तन क्यों होता है इसके अनेकों कारण हैं, जिन्हें दो भागों में बाटा जा सकता है –

1. बाह्य कारण
2. आन्तरिक कारण

बाह्य कारण - भाषा क्योंकि परिवेश सापेक्ष वस्तु भी है इसलिए उस पर अनेक बाहरी तत्त्वों का भी प्रभाव पड़ता है जिनमें भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक प्रभावों इत्यादि की चर्चा की जा सकती है।

(i) **भौगोलिक प्रभाव** - हाइनरिख, मेयर–बेन्फी और कोलित्स जैसे विद्वानों ने भाषा के परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव को महत्त्वपूर्ण माना है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक गठन के साथ–साथ भाषा को भी प्रभावित करता है। जैसे पहाड़ों में रहने वाले लोग अधिक श्रम करते हैं और मैदानी इलाकों में रहने वाले कम। इसका प्रभाव भाषा में इस रूप में दिखाई देता है कि मैदानी भागों के लोगों की भाषा अधिक कोमलता लिए होती है क्योंकि उसे जीवन यापन के साधन एकत्र करने के लिए पहाड़ी भागों के लोगों की तरह जी तोड़ मेहनत नहीं करनी पड़ती। यद्यपि प्रसिद्ध विद्वान् भेस्पर्सन ने इस मत का ज़ोरदार खंडन किया है किन्तु इस दृष्टि से भाषा बिल्कुल परिवर्तित नहीं होती – यह बात भी पूर्णतया ठीक नहीं है। मैदानी भागों में लोग दूर तक एक दूसरे से संपर्क बनाए रखते हैं, इसलिए उनकी भाषा में एकरूपता बनी रहती है जबकि पहाड़ी भागों में संपर्क की कठिनता के कारण भाषा का अलग–अलग विकास होता है। इसी प्रकार उपजाऊ भू–भाग में रहने वाले लोगों की भाषा अधिक सुसंस्कृत होगी क्योंकि वहां न तो खाने–पीने की कमी होगी और लोगों को आगे बढ़ने के विभिन्न अवसर मिलेंगे। जबकि अनुपजाऊ भूमि में रहने वाले लोगों की भाषा अलग होगी। अतः भाषा के परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण हैं।

(ii) **ऐतिहासिक प्रभाव** - भूगोल जहाँ भाषा को अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित करता है वहीं इतिहास भाषा को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। ऐतिहासिक कारणों में विदेशी आक्रमण, राजनीतिक विप्लव और व्यापारिक संबंधों की चर्चा की जा सकती है। हिन्दी में हजारों शब्द अरबी, फारसी, तुर्की और अंग्रेजी के इस सहजता और स्वाभाविकता से रच गए हैं कि उन्हें विदेशी कहना मुश्किल लगता है और इन भाषाओं के शब्दों ने हिन्दी की ध्वनि–संरचना, शब्द–भंडार और वाक्य संरचना को बहुत प्रभावित किया है। अगर किसी विदेशी भारतवर्ष में नहीं आये होते तो शायद इन शब्दों का भी इतनी द्रुतगति से प्रचलन नहीं हो पाता। भाषा में यह परिवर्तन केवल ध्वनि, शब्द अथवा वाक्य के स्तर पर ही नहीं रहता अपितु व्याकरण भी प्रभावित होता है। शब्दों के बहुबचन बनाने में भी विदेशी प्रभाव देखा जा सकता है, मकान से मकानात, कागज से कागज़ात इत्यादि। इसी प्रकार रोमन साम्राज्य का अंग रहने के कारण अंग्रेजी में बहुत से शब्द ग्रीक, लातिन के हैं। ग्रीस के सांस्कृतिक महत्त्व के कारण अंग्रेजी क्या यूरोप की अन्य भाषाओं को हजारों की संख्या में ग्रीक शब्द लेने पड़े। इस प्रकार भाषा के विकास में ऐतिहासिक प्रभाव भी अपनी अहम् भूमिका निभाते हैं।

(iii) **सांस्कृतिक प्रभाव** - समाज का प्राण संस्कृति है अतः भाषा संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। विश्व के इतिहास पर अगर नज़र दौड़ाई जाए तो हम पायेंगे कि केवल भारत में ही नहीं अपितु दूसरे देशों में भी अनेक बार सांस्कृतिक जागरण हुए हैं जब रूढ़ि और परम्परा को त्यागा गया और नवीनता को अपनाया गया। भारत में स्वदेशी के आन्दोलन ने न केवल अपनी वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान के प्रति जनता में प्रेम जगाया अपितु निज भाषा के प्रति भी यह प्रेम चरम सीमा पर था। आर्य समाज की स्थापना के साथ हिन्दी की महत्ता के लिए जो ध्वजपताका फहराया गया उसने तो संस्कृत शब्दों के तत्सम रूपों के प्रयोग की वह भूमि तैयार की जिससे भाषा में एक क्रांतिकारी सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ। हिन्दी का शब्द–भंडार संस्कृत पर आधारित हो गया और वाक्य–विन्यास में भी हिन्दी की प्रकृति पर ध्यान दिया जाने लगा। महान् व्यक्ति भी भाषा को प्रभावित करते हैं। गांधी जी द्वारा हिन्दुस्तानी को बल देने से इस शैली में बहुत विकास हुआ। इसी के साथ दो संस्कृतियों के सम्मिलन से भी शब्दों का, ध्वनियों का लेन–देन होता है, जैसे हिन्दी में द्रविड़ के – नीर, आलि, मीन, यवनों के – घोड़ा, दाम, सुरंग, तुर्कों एवं मुसलमानों के – पाजामा, बाजार, दुकान, कागज, कलम इत्यादि अनेकों शब्द आये हैं।

(iv) **साहित्यिक प्रभाव** - कभी–कभी साहित्य इतना प्रभावशाली हो जाता है कि वह भाषा को भी प्रभावित कर देता है। मध्ययुगीन भारत में कबीर, जायसी, सूर, तुलसी इत्यादि ने हिन्दी की विभिन्न बोलियों को अपनी वाणी का आधार बनाया। उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा (शब्द, वाक्य–विन्यास, शैली) युगों तक साहित्यकारों द्वारा अनुकरणीय रही। आधुनिक युग में, खड़ी बोली की रूक्षता को दूर करके उसे कोमल, मधुर बनाने का संपूर्ण श्रेय छायावादी साहित्य को है। संस्कृत के एकछत्र प्रभाव के विरोध में लोकभाषाओं का प्रणयन इसी प्रभाव का परिणाम है। भाषा पर साहित्यिक प्रभाव के उदाहरण केवल भारत में ही नहीं अपितु मध्य युग में यूरोप में भी देखने को मिलते हैं। वहां भी भारत की ही भांति पुनर्जागरण की लहर में लोकभाषाओं को उद्वेलित किया और लाटिन भाषा के स्थान पर नई भाषाओं ने प्रभुत्व जमाया।

(v) **वैज्ञानिक प्रभाव** - आज का युग निर्विवाद रूप से विज्ञान और प्रौद्योगिकी का युग है। चहुं ओर विज्ञान का ही प्रचार–प्रसार है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नित्य नए अविष्कारों से हज़ारों नवीन शब्दों को गढ़ने की आवश्यकता पड़ती है जो परोक्ष रूप में भाषा की समृद्धि का कारण बनती है। विज्ञान ने मनुष्य का काया–कल्प तो किया ही है, साथ ही भाषा को भी नए आयाम दिए हैं जिससे किसी भी भाषा का शब्द संसार अत्यंत तीव्र गति से आगे बढ़ता है।

भाषा परिवर्तन के आंतरिक कारण - भाषा प्रयोक्ता (प्रयोग करने वाले) का शारीरिक वैशिष्ट्य, मानसिक योग्यता एवं क्षमता तथा भाषा की स्वाभाविक गति को भाषा के परिवर्तन के आंतरिक वर्ग के अंतर्गत विवेचित किया जाता है। भाषा की अपनी प्रकृति उसमें अहं भूमिका निभाती है। भाषा की इसी प्रकृति से संबंधित कारणों को आभ्यन्तर कारण माना जाता है जो इस प्रकार हैं –

1. **प्रयत्नलाघव** - भाषा में परिवर्तन के आंतरिक कारणों में से प्रयत्नलाघव सबसे अहम कारण है। मनुष्य अपनी स्वाभाविक सहजता की ओर जाने की प्रवृत्ति के कारण भाषा के क्षेत्र में भी कम से कम श्रम द्वारा अधिक से अधिक भाव अभिव्यक्त करना चाहता है। विद्वानों का मानना है कि भाषा में होने वाले परिवर्तनों का कुल 90 प्रतिशित इसी कारण द्वारा निष्पन्न होता है। श्रम बचाने या प्रयत्नलाघव की इसी प्रवृत्ति के कारण उपाध्याय से झा, रेलवे स्टेशन से स्टेशन, मास्टर साहिब से मस्सब, पंडित जी से पंडी जी, टेलीफोन के बदले फोन, ऐयरोप्लेन के लिए प्लेन आदि ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं जो मनुष्य ने

अपनी सुविधा के लिए छोटे कर लिए हैं। वास्तव में प्रयत्नलाघव के मूल में मुख–सुख की प्रवृत्ति क्रियाशील होती है। जिन शब्दों के उच्चारण में जीभ को अधिक प्रयत्न करना पड़ता है, मनुष्य उन शब्दों को परिवर्तित करके प्रयुक्त करता है। प्रयत्नलाघव में जहां मेहनत की बचत होती है वहीं समय भी कम लगता है। इसके लिए शब्दों के संक्षिप्त रूप भी उदाहरण हैं, जैसे – यू.एन.ओ., एन.एस.एस., डी.सी., सी.एम., पी.एम., यू.एस.ए. इत्यादि। प्रयत्नलाघव के अंतर्गत भाषा परिवर्तन की निम्नलिखित प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं –

(i) **आगम** - शब्द में पहले से अनुपस्थित किसी नवीन ध्वनि के आकर जुड़ जाने को आगम कहते हैं। कभी–कभी किन्हीं संयुक्ताक्षरों (संयुक्त अक्षरों) के उच्चारण में कठिनाई आने से सुविधा के लिए उसमें किसी स्वर अथवा व्यंजन ध्वनि को जोड़ लिया जाता है स्वर अथवा व्यंजन ध्वनि आगम के तीन भेद हैं – आदि, मध्य, अन्त।

आदि स्वरागम - स्कूल के इस्कूल, स्त्री से इस्तरी, स्तुति से अस्तुति, स्टूल से इस्टूल आदि।

मध्य स्वरागम - मर्म से मरम, धर्म से धरम, कर्म से करम।

अन्य स्वरागम - कृष्ण से कृष्णा, बुद्ध से बुद्धा।

आदि व्यंजनागम - अस्थि से हड्डी, उल्लास से हुल्लास।

मध्य व्यंजनागम - शाप से सराप।

अन्य व्यंजनागम - राधाकृष्ण से राधाकृष्णनन, रंगनाथ से रंगनाथन।

(ii) **लोप** - जब किसी शब्द में पहले से उपस्थित किसी स्वर अथवा व्यंजन ध्वनि का लोप हो जाए तो उसे लोप कहते हैं। यह लोप दो संयुक्त ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई के कारण होता है। यह लोप भी आदि, मध्य और अंत तीनों दिशाओं में होता है। जैसे : अनाज से नाज, अहाता से हाता, स्थल से थल, ज्येष्ठ से जेठ, दुग्ध से दूध, स्टेशन से टेशन इत्यादि।

(iii) **विकार** - उच्चारण की सुविधा के लिए जब एक ध्वनि दूसरी ध्वनि में परिवर्तित हो जाती है तो उसे विकार कहते हैं। जैसे कृष्ण से कान्ह, मेघ से मेह, स्तन से थन, हस्त से हाथ इत्यादि।

(iv) **विपर्यय** - विपर्यय का शाब्दिक अर्थ है उल्टना। कभी–कभी न तो ध्वनियों का आगम होता है और न लोप वरन् वर्णों का क्रम उच्चारण में उलट जाता है। इसके पीछे मुख्य कारण बोलने में शीघ्रता तथा अपूर्ण श्रवण है। जैसे चाकू–काचू, अमरूद–अरमूद, पहुंचना, चहुंपना।

(v) **समीकरण** - जब दो भिन्न ध्वनियां पास रहने से समान हो जाएं तो समीकरण के उदाहरण सामने आते हैं। समीकरण के दो प्रकार हैं – पुरोगामी समीकरण जिसमें पूर्ववर्ती (पहली) ध्वनि बाद वाली ध्वनि के समान हो जाएं जैसे – जगत्नाथ–जगन्नाथ, दूर्वा–दूब, शर्करा–शक्कर। पश्चगामी समीकरण जिसमें बाद वाली ध्वनि के समान हो जाएं जैसे अग्नि–आग, पुत्र–पूत, पथ्य–पथ।

(vi) **विषमीकरण** - जब दो पास–पास की एक जैसी ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई हो और उनमें भेद कर दिया जाए तो उसे विषमीकरण कहते हैं। जैसे कंकण–कंगन, काक–काग, दरिद्र–दलिद्दर।

(vii) **अकारण अनुनासिकता** - उच्चारण सुविधा के लिए कई बार निःश्वास वायु को मुख्य विवर के साथ–साथ नासिका विवर से भी निकाला जाता है जैसे सास से सांस, राम से रांम, चाट से चांट इत्यादि।

प्रयत्नलाघव के अंतर्गत उपर्युक्त प्रक्रियाओं के अतिरिक्त महाप्राणीकरण, अल्प्राणीकरण घोषीकरण, अघोषीकरण इत्यादि प्रक्रियाएं भी सम्मिलित की जा सकती है। इन सभी प्रयत्नों के पीछे एक ही कारण व्यापक फलक पर इन सभी प्रक्रियाओं को अपने में समेटे है, जिसे प्रयत्नलाघव कहा गया है।

2. **अनुकरण की अपूर्णता** - स्वभावतः अनुकरणप्रिय होने पर भी मनुष्य कई बार कई कारणों से पूर्ण अनुकरण नहीं कर पाता। परन्तु भाषा के अर्जन का तो एकमात्र सशक्त माध्यम है ही अनुकरण। भाषा अर्जन की इस प्रक्रिया में मनुष्य किसी से सुनकर जब भावों को भाषा के रूप में ग्रहण करता है तो कुछ ध्वनियों को छोड़ देता है तथा कुछ ध्वनियों को अपनी ओर से जोड़ लेता है। यह जोड़ना और घटाना वाग्रेन्द्रियों (बोलने वाली इन्द्रियों) की भिन्नता के कारण और मानसिक स्तर में भेद होने के कारण होता है जिस प्रकार आंख, कान, नाक रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न है उसी प्रकार दो व्यक्तियों का उच्चारण समान होने पर भी एक जैसा नहीं होता। कुछ लोगों की वाग्रेन्द्रियों में अपूर्णता के कारण वे सहज की 'छ' का उच्चारण 'श' और 'श' का उच्चारण 'छ' करते हैं। ऐसी त्रुटियां आजीवन बनी रहती हैं। मानसिक स्तर भी अनुकरण को प्रभावित करता है। कुछ व्यक्ति कुशाग्र बुद्धि होते हैं तो कुछ मन्द। अपूर्ण उच्चारण में अज्ञान का भी हाथ होता है। शब्द का सही रूप और उच्चारण न पता होने से अनुकरण पूर्व नहीं हो पाता। अज्ञानता के कारण ही ड्राइवर को डरैवर, कम्पाऊंडर को कम्पोडर, सिग्नल डाऊन को सिंगल डान इत्यादि कहा जाता है। इस प्रकार अनुकरण की अपूर्णता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में आती है और कई पीढ़ियों के पश्चात् भाषा में परिवर्तन के लक्षण स्पष्ट दीखने लगते हैं।

3. **भावों का आधिक्य** - भावों के अतिरेक से भी शब्दों का रूप बदल जाता है। कई बार प्रेमवश, क्रोधवश, ईर्ष्यावश हम शब्दों का वास्तविक उच्चारण छोड़कर भिन्न उच्चारण करने लगते हैं। जैसे बाबू का बबुआ, बेटी को बिट्टो या बिटिया, राम को रामू इत्यादि।

4. **बल** - भाषा के विकास अथवा परिवर्तन में बल भी क्रियाशील भूमिका निभाता है। उच्चारण में जिस ध्वनि पर अधिक बल दिया जाता है वह अपने आसपास की ध्वनियों को कमज़ोर कर देती है अथवा समाप्त कर देती है। जैसे अभ्यंतर से भीतर, उपाध्याय से झा, अस्ति से है, इत्यादि।

5. **जानबूझ कर परिवर्तन** - समर्थ और प्रबुद्ध व्यक्ति अथवा साहित्यकार जानबूझ कर भी भाषा में परिवर्तन कर देते हैं। कई बार उपयुक्त शब्द न मिलने पर लोग जान बूझकर किसी मिलते–जुलते शब्द का नये अर्थ में प्रयोग कर देते हैं। अभिव्यक्ति में नई भंगिमा लाने अथवा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए साहित्यकारों ने अनेक देशज तथा विदेशी शब्दों का संस्कृतीकरण किया है। जैसे प्रसाद जी द्वारा पोरस का पर्वतश्वर और सिकन्दर के लिए अलक्षेन्द्र शब्दों को गढ़ा है।

6. **सादृश्य** - किसी एक प्रयोग के आधार पर कोई दूसरा प्रयोग करना सादृश्य के अन्तर्गत विवेचित होता है। इसे मिथ्या सादृश्य भी कहते हैं। इसके पीछे मूलभूत कारण है भाषा प्रयोक्ता का अज्ञान। निर्गुण के सादृश्य पर सगुण हो गया है, एकादश के सादृश्य पर द्वादश, पिंगला के आधार पर इड़ा पिंगला, सैंतीस के सादृश्य पर पैंतीस में, Shall - Should के आधार पर can - could में बदल गया। पाश्चात्य के सादृश्य पर पौर्वात्य शब्द बन गया है। वस्तुतः शब्दों का व्युत्पत्ति और वास्तविक रूप से न जानने के कारण ही इस तरह की भ्रांति होती है।

7. **बोलने वालों की उन्नति** - भाषा प्रयोक्ताओं की वैज्ञानिक अथवा अन्य क्षेत्रों में उन्नति भी भाषा परिवर्तन में सहायक होती है। नये–नये क्षेत्रों में उन्नति से नये–नये शब्दों को गढ़ने की आवश्यकता पड़ती है और कभी–कभी पुराने शब्दों को नए अर्थ के संदर्भ में प्रयुक्त करना पड़ता है। इसी को वैज्ञानिक प्रभाव भी कहा गया है। यूं विज्ञान, कला, साहित्य और संस्कृति – यह उन्नति किसी भी क्षेत्र में हो सकती है।

1.2.3 सारांश :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा में उत्थान, विनाश अथवा उत्पत्ति इत्यादि परिवर्तन के ही विभिन्न रूप है। प्रकृति के अन्य उपकरणों की भांति भाषा इस परिवर्तन के नियम से अछूती नहीं है फिर भाषा तो नित्य प्रयोग की वस्तु है, भिन्न–भिन्न प्रयोक्ताओं द्वारा इसका विभिन्न रूपों में व्यवहार होता है इसलिए इसमें बदलाव होना परमावश्यक है। फिर स्थिर वस्तु जड़ है और गतिशील चेतन। भाषा के प्राण इसी गतिशीलता में बसते हैं। भाषा परिवर्तत जिन दो कारणों से होता है उन्हें आंतरिक और बाह्म कारणों की संज्ञा दी जाती है इन्हीं विभिन्न कारणों से प्रभावित होती हुई भाषा नित्य नूतन रूप लिए सामने आती है। भाषा के विकास से अभिप्राय किसी भाषा का अच्छा या बुरा होना नहीं है। विबास केवल परिवर्तन को लक्षित करता है। परिवर्तन से भाषा ऊंची भी उठ सकती है और नीचे भी जा सकती है। भाषा परिवर्तन के उपर्युक्त विवेचित कारण भाषा को गहराई से प्रभावित करते रहते हैं और परिवर्तन का क्रम चलता रहता है।

1.2.4 बोध प्रश्न :

1. भाषा की विशेषताएं कौन–सी हैं?
2. भाषा में परिवर्तन के क्या कारण होते हैं?

पाठ संख्या–1.3

ध्वनि-विज्ञान : ध्वनियों का वर्गीकरण

पाठ की रूपरेखा

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 प्रस्तावना
1.3.2 ध्वनि गुण
1.3.3 ध्वनि के वर्गीकरण के आधार
1.3.4 हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण
1.3.5 सारांश
1.3.6 बोध प्रश्न

1.3.0 उद्देश्य :

भाषा में ध्वनि का विशेष महत्व है। ध्वनि भाषा की एक लघुतम इकाई है, जिसका प्रयोग–उच्चारण की दृष्टि से महत्व रखता है। भाषा की ध्वनियों को विभिन्न वर्गों में रखा जा सकता है और इसमें निरन्तर परिवर्तन भी होते रहते हैं। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि;

* हिन्दी ध्वनियों को विभिन्न वर्गों में बांटा गया है,
* ध्वनि परिवर्तन की कुछ निश्चित दिशाएं है,
* ध्वनि परिवर्तन के विभिन्न कारण होते हैं, और
* ध्वनि परिवर्तन भाषा का स्वाभाविक लक्षण होता है।

1.3.1 प्रस्तावना :

भाषा विज्ञान में ध्वनि भाषा की उस लघुतम इकाई को कहते हैं, जिसका उच्चारण और श्रोतयता की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है।

ध्वनि के अध्ययन के सन्दर्भ में स्वनिम, संध्वनि, ध्वनि-भेद, ध्वनि-गुण की आवश्यकता को जानना अपेक्षित है। 'स्वनिम' के मूल अंग्रेजी रूप (Phoneme) का पहला व्यवहार उन्नीसवीं शती में हुआ। उन दिनों इसे ध्वनि की इकाई के लिए उस रूप में प्रयुक्त किया गया, जिस रूप में अब प्रायः 'स्वन' का व्यवहार किया जाता है। उस शती के अन्त में पोलिश विद्वान् वादुइन कुतिने को इस बीज-अवधारणा को प्रस्तुत करने का श्रेय दिया जाता है।

बीसवीं शती में एडवर्ड सपीर ने स्वनिमिक व्यतिरेकता के सन्दर्भ में, एक स्वनिम के दूसरे से अलगाव को स्पष्ट करने के संदर्भ में इसका व्यवहार किया। इसके साथ ही प्रागस्कूल के ध्वनि विज्ञानियों ने भी इसका प्रयोग किया। पर इसे महत्त्व दिया रूसी भाषाविद् त्रुबत्स्काय ने इस क्षेत्र में अपने द्वारा किये गए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य के आधार पर।

'स्वनिम' न्यूनतम आभिप्राय ध्वनि की इकाई को कहते हैं। यह ध्वनि की वह न्यूनतम इकाई है, जो अर्थ में परिवर्तन ले आती है। प्रसिद्ध भाषाविद् व्यूमफोल्ड के शब्दों में वह 'प्रभेदक' ध्वनि अभिलक्षण की न्यूनतम इकाई (Minimum unit of distinctive sound feature) है। इस रूप में 'स्वनिम' को न्यूनतम शब्द-युग्म के द्वारा पहचाना जाता है। ऐसे शब्द युग्म अपने अर्थ में परस्पर इसलिए अलग होते हैं कि उनमें एक स्वनिम निश्चित स्थान पर बदल जाता है जैसे-जल, बल, कल, पल। इन सभी उदाहरणों में पहले स्थान पर स्वनिम बदल रहा है। फलतः अर्थ में परिवर्तन उपस्थित हो रहा है।

उक्त रूप में 'स्वनिम' को अमूर्त प्रकार्यमूलक अवधारणा के बतौर रेखांकित किया जाता है। यहां यह भाषा की ध्वनि-व्यवस्था को संघटित करने वाली संरचनात्मक नातेदारी के तन्त्र के बीच क्रियाशील भाषा की न्यूनतम विभेदक इकाई है। पर स्वनिम इस अमूर्त्तता से परे ध्वनि विशेष के विभिन्न उच्चारण-भेदों, संध्वनियों (Allophones) के कुलक (Set) के रूप में उपस्थित होती है। साथ ही इसे ध्वनि-कुलक की अपेक्षा ध्वनियों के अभिलक्षणों के कुलक के बतौर भी प्रस्तुत किया जाता है।

स्वनिम को तिरछे आकार की रेखाओं से घेरकर निर्दिष्ट किया जाता है। अंग्रेजी में इसे Slashed bracket कहते हैं।

'संध्वनि'

'संध्वनि' अंग्रेजी 'Allophones' का हिन्दी रूपान्तर है। एक ही स्वनिम के उच्चारण में वैविध्य आने से संध्वनि का जन्म होता है। डेविड विस्टल के शब्दों में 'संध्वनि' एक ऐसी स्वशास्त्रीय इकाई या स्वनिम है, जो एक से अधिक दो रूपों में उपस्थित होती है। भाषाविदों की मान्यता है कि दो ध्वनियां कभी एक जैसे उच्चारित नहीं हो सकती। इसमें अन्तर होता है, वह सामान्यतः अदृश्य रह जाता है किन्तु वह अन्तर और परिवर्तन एक ध्वनि के अनेक बार उच्चरित किये जाने की प्रक्रिया में वर्तमान रहता है। कुछ अन्तर सामान्य अन्तरों से ज्यादा सुस्पष्ट होते हैं जैसे ब्रितानी में 'र' (R) का उच्चारण। यहां जो अन्तर पड़ता है, इसमें अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। पर यह सबसे ज्यादा ब्रितानी अंग्रेजी में 'र' R के ऐसे विभिन्न उच्चारणों को जिनके अर्थ में परिवर्तन नहीं आता, 'र' की संध्वनि कहा जाएगा। यह संध्वनि मूल वैविध्य से प्राप्त होती है। अंग्रेजी में 'Come' (कम) के लिए कम की जगह खम कहना कि (पिन) की जगह फिन कहना ऐसे ही उच्चारण वैविध्य के उदाहरण हैं। हिन्दी 'कहने' में 'की', 'क' तथा के दोनों की तरह उच्चारित किया जाता है। यहां 'के', 'क', 'की' संध्वनि का ही उदाहरण है।

ध्वनि के सामान्यः दो भेद किये जाते हैं। इन्हें स्वर कहते हैं। स्वर वह ध्वनि है, जिसका उच्चारण करते समय प्रश्वास वायु निर्विरोध निकल जाती है इसमें प्रश्वास को कहीं रुकावट नहीं मिलती। किन्तु व्यंजन वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में वागेन्द्रियों के द्वारा प्रश्वास-वायु का अवरोधन होता है। किन्तु प्रश्वास-वायु रुक कर बाहर निकलती है। इस अन्तर को एक रूपक के द्वारा समझा जा सकता है। एक ओर नदी का प्रवाह और दूसरी ओर नहर का प्रवाह। नदी प्रवाह में कोई कृत्रिम अवरोध नहीं होता है। किन्तु नहर प्रवाह नियन्त्रित और सावरोध होता है। नदी की प्रवाह प्रकृति स्वर की विशेषता है, किन्तु नहर के प्रवाह की प्रकृति व्यंजन ध्वनि की विशेषता है।

1.3.2 ध्वनि गुण :

ध्वनि-गुण ध्वनि की मात्रा, उसके सुर और उसके बलाघात को कहते हैं। ध्वनि गुण—ध्वनि के दोनों भेद स्वर और व्यंजन पर आधारित होते हैं, पर इनके कारण स्वर और व्यंजन की प्रकृति में अन्तर आता है। ध्वनि-गुण प्रभावित करते हैं। ध्वनि-गुण को कहीं-कहीं 'ध्वनि-लक्षण' भी कहा गया है। पश्चिमी ध्वनि शास्त्रियों ने इसे रागात्मक तत्त्व (Prosidic Features) रूप में रेखांकित किया है कुछ विद्वान् इसे प्रोसोडिम (Prosodeme) या गौण स्वनिम (Secondary Phoneme) भी कहते हैं। सुर और बलाघात दोनों को प्रायः 'आघात' के अन्तर्गत लिया जाता है। इस प्रकार ध्वनि-गुण के अन्तर्गत मात्रा और आघात विचारणीय हैं।

मात्रा

मात्रा को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि किसी भी ध्वनि के उच्चारण में या उच्चारणेतर मौन में समय की जो मात्रा लगती है, वही ध्वनि-गुण के अन्तर्गत आने वाली मात्रा है। इसे अंग्रेजी में Quality Length More Duration : Chorn जैसे कई नामों से पुकारा जाता है। More या Chron मात्रा की एक इकाई को भी कहते हैं। मात्रा के तीन भाग होते हैं-ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। यन्त्र द्वारा भी आने वाली परीक्षा के आधार पर ऐसे अनेकानेक प्रभेदों की संभावना दृष्टिगत होती है।

आघात (Accent)

भाषा-विज्ञान में 'आघात' का प्रयोग तीन अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थों में इनके अन्तर्गत मात्रा, सुर, लहर या वाक्य-सुर बलाघात, ध्वनि प्रक्रिया तथा ध्वनि-प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। पामर जैसे भाषाविद् इसी सीमा में अपना अर्थ घोषित करते हैं। यह मात्रा बलाघात का समानार्थी है। दूसरे अर्थ में आघात एक सीमा में अपना अर्थ घोषित करता है। यहां यह 'बलाघात' मात्र है। प्रैंटर, पेई, गेनर जैसे भाषाविद् इस वर्ग के प्रतिनिधि हैं। तीसरे अर्थ में इसका प्रयोग उक्त दोनों के छोरों के बीच में होता है। इस दृष्टि से इसके अन्तर्गत बलाघात (Stress) और सुराघात (Pitch) का विवेचन-मात्र अभीष्ट होता है। आजकल भाषा-अध्ययन के क्षेत्र में आघात का यही अर्थ मान्य है।

1.3.3 ध्वनि के वर्गीकरण के आधार

ध्वनि के वर्गीकरण के तीन आधार हैं—स्थान, प्रयत्न और करण।

1.3.3.1 स्थान

ध्वनि-विज्ञान के अध्ययन के सन्दर्भ में स्थान उन वागिन्द्रियों को कहते हैं, जहां ध्वनियों के उच्चारण में प्रश्वास वायु का अवरोध होता है। मुख-विवर में ओष्ठ से लेकर स्वरयन्त्र तक अनेक स्थान होते हैं। प्रायः इनका परिचय भीतर से बाहर की ओर जाता है। इनमें अग्रलिखित स्थान महत्त्वपूर्ण हैं—

स्वर यंत्र
उपालिजिह्वा
काकव्य
कण्ठ
तालु
मूर्धा
वर्त्स
दन्त
ओष्ठ

मुख-विचार में स्थित इन स्थिति रूप वागेन्द्रियों को निम्नलिखित आरेख में देखा जा सकता है। उक्त स्थानों से उच्चरित होने वाली ध्वनियों में क्रमशः 1. स्वरयन्त्रमुखी 2. उपालिजिह्वीय 3. काकव्य 4. कण्ठ्य 5. तालव्य 6. मूर्धन्य 7. वर्त्स्य 8. दन्त्य और 9. ओष्ठ्य कहा जाता है।

स्वरयन्त्रमुखी

स्वरयन्त्रमुखी उस ध्वनि को कहते हैं जिसके उच्चारण में स्वरयन्त्रमुख संकीर्ण हो जाता है और प्रश्वास रगड़ खाकर खुले मुख द्वार से निकल जाता है।

उपालिजिह्वा

उपालिजिह्वा उस ध्वनि को कहते हैं जो स्वरयन्त्र और अलिजिन्ह के बीच जिह्वामूल को पीछे हटाकर गलविल को संकीर्ण करने से उत्पन्न होती है।

काकव्य

काकव्य उस ध्वनि को कहते हैं जिसमें मुख-विवर पूरी तरह खुला रहता है और प्रश्वास बन्द कण्ठ के द्वार को वेगपूर्वक खोलकर बाहर निकल जाता है।

कण्ठ्य

कण्ठ्य वे ध्वनियां कहलाती हैं जिनके उच्चारण में जिहवा का पिछला हिस्सा कोमल तालू को छूता है।

तालव्य

तालव्य वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में जिहवा का सबसे अगला भाग कठोर तालू को छूता है।

मूर्धन्य

मूर्धन्य वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में जिहवा की नोक उलट जाती है और इसी स्थिति में वे मूर्धा को छूते हैं। पर जहां जिहवा की नोक उलटना अनिवार्य नहीं माना जाता, वक्ता जिह्वा की सीधा नोक से भी मूर्धा का स्पर्श कर मूर्धन्य ध्वनियों को उच्चारित कर सकता है।

वर्त्स्य

वर्त्स्य वे ध्वनियां कहलाती हैं, जिनके उच्चारण में जिहवा की नोक दांत के ऊपरी हिस्से या मसूड़े के भाग को छूती हैं।

दन्त्य

दन्त्य वे ध्वनियां हैं जिनके उच्चारण में जिहवा की नोक ऊपर की दन्तावली को छूती है।

ओष्ठ्य

ओष्ठ्य ध्वनियां दो भागों में विभक्त होती हैं-1. द्वयोष्ठ्य 2. दन्त्योष्ठ्य

द्वयोष्ठ्य

जब होठों के जुड़ने से ध्वनियों का उच्चारण होता है, तब वे ध्वनियां द्वयोष्ठ्य कहलाती हैं।

दन्त्योष्ठ्य

ऊपरी प्रक्रिया से अलग जब ऊपर की दन्त पंक्ति नीचे के ओष्ठ को सीधे में जोड़कर ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है, तब वे ध्वनियां दन्त्योष्ठ्य कहलाती हैं।

प्रयत्न

प्रयत्न उच्चारण की चेष्टा का नाम है। इसमें मूलतः उच्चारण की प्रक्रिया स्पष्ट होती है। इसके दो प्रकार होते हैं। (क) आभ्यन्तर (ख) बाह्य।

मुख-विवर के भीतर अर्थात् ओष्ठ से लेकर कण्ठ तक जो ध्वनि के उच्चारण-प्रयत्न होते हैं, उन्हें आभ्यान्तर प्रयत्न कहते हैं, किन्तु कण्ठ के नीचे ध्वनि के जो उच्चारण-प्रयत्न होते हैं, उन्हें बाह्य प्रयत्न कहा जाता है। यहां आभ्यन्तर और बाह्य का वर्गीकरण मुख-विवर के दृष्टिकोण से किया जाता है। मुख-विवर की सीमा को आन्तरिक मानकर ओष्ठ से बाहर के हिस्से को जिस तरह बाह्य कहते हैं उसी कण्ठ के नीचे के हिस्से को भी बाह्य कहा जाता है।

आभ्यन्तर प्रयत्न

स्पर्श प्रयत्न के कई आधार हैं-स्पर्श, घर्षण, स्पर्श-संघर्षण, नासिकता, पार्श्विकता, लुंठितता और उत्क्षिप्तता।

स्पर्श

स्पर्श का अर्थ है छूना। ध्वनियों के उच्चारण में जिह३वा कण्ठ से लेकर ओष्ठ तक अनेक स्थानों का स्पर्श करती है। इसके आधार पर स्पर्श की प्रवृत्ति को देखते हुए स्पर्श के अनेक रूप हो जाते हैं। स्पर्श की मात्रा जब कम होती है तब उसे ईषत्-स्पृष्ट प्रयत्न वाले व्यंजन 'अर्ध-स्वर' कहा जाता है। संस्कृत के वैयाकरण इसे ही 'अन्तस्थ' कहते थे जिसका अर्थ था कि ऐसी ध्वनियों की स्थिति स्वर और व्यंजन के बीच की होती है।

घर्षण

घर्षण प्रयत्न का आधार है जिसमें हवा की भीतर से ज़ोर के साथ फैलते हुए, मुख-द्वार की

विवृतावस्था में स्वरयंत्र के मुख पर रगड़ उत्पन्न की जाती है। इस प्रयत्न से उत्पन्न ध्वनियां संघर्ष कहलाती हैं।

स्पर्श संघर्षण

यह प्रयत्न का वह आधार है जिसमें जीभ का अगला भाग मसूड़ों के निकट कठोर तालु को रगड़ या घर्षण के साथ छूता है। इसमें उच्चारण का आरम्भ स्पर्श से होता है, किन्तु इसकी मन्दता के कारण हवा को रगड़ के साथ निकलना पड़ता है। इस प्रकार के प्रयत्न से उत्पन्न होने वाली ध्वनियां स्पर्श-संघर्षण कहलाती हैं।

नासिकता

यह प्रयत्न वह आधार है जिसमें प्रश्वास वायु हलक के ऊपर नासिका-रैध्र से निकलते हुए नासिका-विवर से गूंज पैदा करती है। इस प्रयत्न में ओष्ठ, जीभ, दांत, जीभ-मूर्धा जिह्वपश्च, कोमल तालु आदि का स्पर्श तो होता है पर यहां प्रश्वास-वायु बाधित नहीं होती है।

पार्श्विकता

यह प्रयत्न का वह आधार है जिसमें जीभ की नोक मसूड़ों का सम्यक् स्पर्श करती है, किन्तु इस प्रक्रिया में जिह्वा के दायें-बाएं छूटती है और प्रश्वास इन दोनों पार्श्वों से निकल जाता है। पर प्रश्वास का यह निस्सरण कभी तो दोनों पार्श्व से होता है और कभी एक ही पार्श्व से। इस कारण इसके दो रूप स्पष्ट होते हैं-

1. पार्श्विकता और 2. द्विपार्श्विकता। इस आधार पर उच्चारित होने वाली ध्वनियां पार्श्विक कहलाती हैं।

लुंठितता

यह प्रयत्न का वह आधार है, जिसमें जिह्वा को नोक की तरह लपेट कर या लुंठित कर तालु या वर्त्स का स्पर्श करते हुए ध्वनि की जाती है। ऐसी उच्चरित ध्वनि को लुंठित कहते हैं। विकल्प से इन्हें भी लोड़ित कहा जाता है।

उत्क्षिप्तता

यह प्रयत्न का वह आधार है जिसमें जिह्वा को लपेट कर या उसकी नोक उलट कर कठोर तालु को झटके के साथ छूते हुए जिह्वा को सीधा कर लिया जाता है। इस प्रयत्न से उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को उत्क्षिप्तता कहते हैं।

बाह्य प्रयत्न

बाह्य प्रयत्न के अनेक भेद हैं। इनमें श्वास या अघोष नाद या घोष स्वरतंत्री पर आधारित हैं तो अल्प-प्राण, महा-प्राण जैसे भेद प्राण वायु पर आधारित हैं और उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आरोह-अवरोह पर।

श्वास या अघोष

जब स्वरतन्त्री खुली रहती है और श्वास निर्बाध रूप से बाहर निकलता है, तब श्वास या अघोष नामक प्रयत्न होता है। श्वास इसका प्राचीन नाम है और अघोष नवीन।

नाद या घोष

जब श्वास प्रयत्न के विपरीत श्वास के निकलने के क्रम में स्वरतन्त्रियां बाधित होती हैं और उनसे कम्पन होने लगता है, तब इस कम्पन से नाद उत्पन्न होता है। इन्हीं ध्वनियों को घोष कहते हैं।

अल्पप्राण

अल्पप्राण नाम का प्रयत्न वहां होता है जहां ध्वनि के उच्चारण में वायु का कम–से–कम प्रयोग होता

है।

महाप्राण

यह प्रयत्न वहां होता है जहां ध्वनि के उच्चारण में वायु का अधिक प्रयोग होता है।

उदात्त

उदात्त उन स्वरों को कहते हैं जिसमें आरोह होता है। यह प्रयत्न स्वर के उच्चारण में ही होता है।

अनुदात्त

अनुदात्त प्रयत्न वहां होता है जहां स्वर नीचे गिरा हुआ अर्थात् अवरोही हो जाता है। यह प्रयत्न भी स्वर के उच्चारण का ही प्रयत्न है।

स्वरित

'स्वरित' सम यानी बराबर को कहते हैं। इस प्रयत्न में आरोह और अवरोह दोनों के बीच की स्थिति होती है। यह स्वर के उच्चारण का ही एक प्रयत्न है।

1.3.3.3 करण

करण गतिशील वागिन्द्रियां हैं। स्थान स्थिर वागिन्द्रियों को कहते हैं किन्तु करण गतिशील वागिन्द्रियों को इस दृष्टिकोण से चार वागन्द्रियां करण कहलाती हैं।

अधरोष्ठ

जिह्वा
कोमल तालु
स्वरतन्त्री
अधरोष्ठ

ओष्ठों के ऊपर का भाग प्रायः स्थिर रहता है, किन्तु ध्वनियों के उच्चारण में नीचे का ओष्ठ गतिशील रहता है यह कभी ऊपर के ओष्ठ का स्पर्श कहता है, तो कभी ऊपर की दन्तावली का। इसलिए नीचे के ओष्ठ को करण कहते हैं।

जिह्वा

जिहवा वागिन्द्रियों में सबसे महत्त्वपूर्ण करण है, क्योंकि वह सर्वाधिक गतिशील है। यह आगे-पीछे ऊपर–नीचे गतिशील रहकर अनेक ध्वनियों के उच्चारण में सहायता करती है।

कोमल तालू

इसे स्थान और करण दोनों माना जाता है। जिहवा की तुलना में इसे स्थान कहते हैं, किन्तु इसकी अपनी प्रवृति इसे करण बनाती है। इसकी हिल-डुल अनुनासिक वर्ग के उच्चारण में सहायता करती हैं।

स्वरतन्त्री

करण के रूप में स्वरतन्त्री अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह कभी खुलती और कभी बन्द होती है तो कभी कम्पन प्रकट करती है। इस तरह अनेक ध्वनियों के उच्चारण में यह अपनी भूमिका निभाती है।

हिन्दी की ध्वनियां

हिन्दी ध्वनियों का स्त्रोत यद्यपि संस्कृत है, संस्कृत में भी वैदिक ध्वनियां हैं, तथापि ये लौकिक संस्कृत में पहली और दूसरी प्राकृत तथा पुनः अपभ्रंश से स्वरूपित परिवर्तित होती हुई हिन्दी को प्राप्त हुई है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में फारसी और अंग्रेजी स्त्रोत से भी कुछ ध्वनियां आयी हैं। पर इनका प्रयोग सुधी सामाजिकों द्वारा ही किया जाता है। आम जनता इन ध्वनियों का अनुकरण कर लेती है।

हिन्दी की ध्वनियां निम्नलिखित हैं।

स्वर ध्वनियां

निजी स्वर ध्वनियां

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ (ऋ), ए, ऐ, ओ, औ।

संस्कृत से आगत ध्वनियां—अं, अः

हिन्दी में यद्यपि 'ऋ' का उच्चारण नहीं किया जाता है तथापि इसका लिखित अस्तित्व और महत्त्व विद्यमान है।

व्यंजन ध्वनियां

निजी व्यंजन ध्वनियां

क, ख, ग, घ, ङ

च, छ, ज, झ, ञ

ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़

त, थ, द, ध, न

प, फ, ब, भ, म

य, र, ल, व

श, ष, स, ह

फ़ारसी स्त्रोत से आगत ध्वनियां

क़, ख़, ग़, ज़ और फ़।

1.3.4 हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण

हिन्दी ध्वनियों के वर्गीकरण में स्वर और व्यंजन ध्वनियों का अलग-अलग वर्गीकरण किया जाता है। इसमें स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण जहां स्थान और करण के आधार पर किया जाता है वहां व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण स्थान और प्रयत्न के आधार पर किया जाता है।

हिन्दी स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण

हिन्दी स्वर ध्वनियों के वर्गीकरण के 2 आधार हैं-1. स्थान का आधार और 2. करण का आधार।

स्थान के आधार पर ध्वनियों का वर्गीकरण

स्वर ध्वनियों का स्थान की दृष्टि से वर्गीकरण का पहला आधार उच्चारण में एक या एकाधिक स्थान का होता है और एक स्थान में उच्चरित ध्वनियों को मूल स्वर कहते हैं और एकाधिक स्थान से उच्चरित ध्वनियों को संयुक्त स्वर कहते हैं और एकाधिक स्थान में उच्चरित ध्वनियों का वर्गीकरण स्थान और प्रयत्न के आधार पर किया है।

एकाधिक स्थान का आधार

इस आधार पर हिन्दी में 'ए' और 'ओ' ध्वनियां स्वर कहलाती हैं। 'ऐ' कंठ-तालव्य ध्वनि है और 'औ' कंठोष्ठ्य ध्वनि। इसके अतिरिक्त मुख और नासिक दोनों स्थानों में से एक साथ स्वर ध्वनियां उच्चरित होती हैं अर्थात् प्रश्वास-वायु जब नासिक से बाहर निकलती है तब भी स्वर ध्वनियां अनुनासिक हो जाती हैं।

करण के आधार पर स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण

यद्यपि करण वागिन्द्रयां, स्वरयन्त्री कोमल तालू, जिह्वा और अधरोष्ठ चारों ही हैं, किन्तु स्वर के वर्गीकरण में जिह्वा और ओष्ठ ही मुख्य रूप से करण की भूमिका निभाते हैं।

जिह्वा के आधार पर स्वर का वर्गीकरण दो रूपों में किया जाता है ऊंचाई के आधार पर वर्गीकरण और जिहवा के उत्थापित भाग के आधार पर वर्गीकरण।

जिह्वा की ऊंचाई के आधार पर स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण

जिह्वा की ऊंचाई मुख-विवर को कम खोलने में निर्णायक भूमिका अदा करती है। जब श्वास वायु मुख-विवर से बाहर निकलती है तो उसमें कहीं भी रूकावट नहीं होती, किन्तु जीभ को ऊपर उठाकर प्रश्वास

के निकलने वाले रास्ते को संकरा बना दिया जाता है। संकरा बनाने की यह क्रिया कहीं कम होती है और कहीं अधिक। इस दृष्टि से मुख-विवर की चार भिन्न स्थितियां सामने आती हैं, जिनका आधार जिहवा की ऊंचाई बनती है। इस आधार पर चार प्रकार की स्वर ध्वनियां प्राप्त होती हैं—विवृत, अर्ध-विवृत, अर्ध-संवृत, संवृत।

विवृत

विवृत का शाब्दिक अर्थ है खुला। जब जिह्वा और मुख विवर के ऊपरी भाग की दूरी अधिक से अधिक रह जाती है तब इस तरह की ध्वनि उत्पन्न होती है। हिन्दी स्वर ध्वनियों में और 'अ' और 'आ', ध्वनियां विवृत ध्वनि के उदाहरण हैं।

अर्ध विवृत

इस प्रकार की ध्वनि के उच्चारण में विवृत की अपेक्षा जिहवा और मुख-विवर के ऊपरी भाग की दूरी आधी रहती है, तब जो स्वर ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें अर्ध विवृत कहते हैं 'ए' और 'ओ' ध्वनियां अर्ध विवृत हैं।

अर्ध संवृत

जब संवृत की अपेक्षा जिहवा और मुख-विवर के ऊपरी भाग की दूरी अधिक रहती है, तब जो स्वर ध्वनियां उत्पन्न होती हैं, उन्हें अर्ध-संवृत कहते हैं जैसे 'ऐ' और 'औ'।

संवृत

जब जिह्वा और मुख-विवर के ऊपरी भाग के बीच कम से कम दूरी हो जब जिन ध्वनियों का उच्चारण होता है, वे ध्वनियां संवृत कहलाती हैं। हिन्दी की 'इ', 'ई' और 'उ', 'ऊ' ध्वनियां संवृत कहलाती हैं।

जिह्वा के उत्थापित भाग के आधार पर स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण

इसे जिह्वा के अंश-विशेष के सक्रिय आधार के रूप में भी समझा जा सकता है। इससे जिह्वा का अंश-विशेष मुख्य से होता है और करण के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिह्वा को आगे-पीछे तीन भागों में बांटा जाता है। इन्हीं के आधार पर स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण किया जाता है। जिह्वा का जो भाग ऊपर उठकर निःश्वास के रास्ते को संकरा बना देता है या बदल देता है, उसके अनुसार स्वर की पहचान होती है।

अग्रस्वर

इसमें जिहवा के अग्र भाग को उठाकर स्वरों का उच्चारण किया जाता है। हिन्दी में 'इ', 'ई', 'ए', 'ऐ' ध्वनियां अग्र स्वर हैं।

मध्य स्वर

जब जिहवा के मध्य भाग को उठाकर स्वर का उच्चारण किया जाता है तब उसको केन्द्रीय स्वर कहते हैं। इसका नाम मध्य स्वर भी है हिन्दी 'अ' स्वर ध्वनि इसका उदाहरण है।

पश्च स्वर

जब जिह्वा के पिछले भाग को उठाकर स्वर का उच्चारण किया जाता है, तब इसे पश्च स्वर कहते हैं। हिन्दी में 'आ', 'उ', 'ऊ', 'ओ', 'औ' ध्वनियां इनके उदाहरण हैं।

ओष्ठ के आधार पर स्वर ध्वनियों का वर्गीकरण

स्वर ध्वनियों के उच्चारण में ओष्ठ की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रश्वास वायु का नियंत्रण यदि मुख-विवर के भीतर जिह्वा द्वारा होता है तो बाहर ओष्ठ के आधार पर हिन्दी स्वर-ध्वनियों का वर्गीकरण प्रमुखतः तीन रूपों में किया जाता है-प्रसृत या अवृतमुखी, वर्तुल या वृतमुखी और अर्धवर्तुल।

प्रसृत या अवृतमुखी

जब ओष्ठ अपनी स्वाभाविक स्थिति में खुले हुए हैं तब ओष्ठ की इस स्थिति में जिन स्वर ध्वनियों का उच्चारण होता है, उन्हें प्रसृत ध्वनियां कहते हैं। इ, ई, ए, ऐ स्वर ध्वनियां कहलाती हैं। इसे अवृतमुखी भी कहते हैं।

वर्तुल या वृतमुखी

ओष्ठ को गोलाकार कर जब दोनों होठों की दूरी बढ़ा दी जाती है तब वर्तुल स्थिति होती है। इस स्थिति में उच्चारित उ, ऊ, औ स्वर ध्वनियां वर्तुल कहलाती हैं। इसे वृतमुखी भी कहते हैं।

अर्धवर्तुल

जब ओष्ठ पूरी तरह वृतमुखी या गोलाकार न होकर अर्धवृताकार होते हैं तब ओष्ठ की अर्धवर्तुल स्थिति होती है। हिन्दी 'अ' ध्वनि का उच्चारण ऐसी स्थिति में ही होता है। अतः अ, ध्वनि को अर्धवर्तुल ध्वनि माना जाता है।

हिन्दी व्यंजन ध्वनियों के वर्गीकरण के दो आधार हैं—स्थान का आधार और प्रयत्न का आधार।

स्थान के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

स्थान के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकरण किया जाता है—

प्राचीन वैयाकरणों के अनुरूप			**आधुनिक भाषाविदों के अनुरूप**
कवर्ग—			
(क, ख, ग, घ)—कंठ्य			काकल्य
'अकुहविसर्जनीयानां कंठः'			
चवर्ग—			
(च, छ, ज, झ)—तालव्य 'इचुयशानां तालुः'			वर्त्स्य
टवर्ग—			
(ट, ठ, ड, ढ)—मूर्धन्य 'ऋटुरषाणां मूर्धा'			मूर्धन्य
तवर्ग-			
(त, थ, द, ध) दन्त्य 'ऌतुलसानां दन्ताः'			दन्त्य
पवर्ग-			
(प, फ, ब, भ) ओष्ठ्य 'उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ'			ओष्ठ्य
ङ ञ ण न म			क्रमशः काकल्य, वर्त्स्य, मूर्धन्य,
(ञमङणनानां नासिका च)			दन्त्य, ओष्ठ्य।
य	—	तालव्य	वर्त्स्य
र	—	मूर्धन्य	मूर्धन्य
ल	—	दन्त्य	दन्त्य
व	—	ओष्ठ्य	द्वयोष्ठ-दन्त्योष्ठ्य
श	—	तालव्य	तालव्य
ष	—	मूर्धन्य	मूर्धन्य
स	—	दन्त्य	दन्त्य
ह	—	कंठ्य	स्वरयंत्रमुखी

प्रयत्न के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

प्रयत्न के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण दो रूपों में किया जाता है—आभ्यंतर प्रयत्न का आधार और बाह्य/बाहरी प्रयत्न का आधार

आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण—आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण स्पर्श, स्पर्श-संघर्षी, अनुनासिक, अन्तस्थ/अर्धस्वर, पार्श्विक, लुंठित, उत्क्षिप्त और उष्म (संघर्शी) रूपों में किया जाता है।

स्पर्श

आभ्यंतर प्रयत्न की दृष्टि से हिन्दी में क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ—कुल सोलह ध्वनियां स्पर्श कहलाती हैं।

स्पर्श संघर्षो

आभ्यांतर प्रयत्न की दृष्टि से च, छ, ज, झ कुल चार ध्वनियां स्पर्श संघर्षो कहलाती हैं।

अनुनासिक

हिन्दी की ङ, ञ, ण, न और म ये पांच ध्वनियां आभ्यंतर के आधार की दृष्टि से अनुनासिक हैं।

अन्तस्थ

हिन्दी की 'य' और 'ब' ध्वनियां आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर अन्तस्थ अर्धस्वर कहलाती हैं।

पार्श्विक

हिन्दी की 'ल' ध्वनि आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर पार्श्विक है।

लुंठित

इसे लोड़ित भी कहते हैं। हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों में 'र' को आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर लुंठित माना जाता है।

उत्क्षिप्त

हिन्दी की ड़, ढ़ ध्वनियां प्रयत्न के आधार पर उत्क्षिप्त कहलाती हैं।

उष्म/संघर्षो

संस्कृत वैयाकरणों ने जिसे उष्म ध्वनि माना है उसे ही आधुनिक भाषाविद् संघर्ष कहते हैं। हिन्दी की श, ष, स, ह और विसर्ग (:) ध्वनियां आभ्यंतर प्रयत्न के आधार पर संघर्षी है। इसके अतिरिक्त फ़ारसी मूल से आये क, ख, श, ज, फ ध्वनियां भी संघर्षी हैं। दन्योष्ठ्य 'व' को भी संघर्षो माना गया है।

बाह्य प्रयत्न के आधार पर हिन्दी ध्वनियों का वर्गीकरण प्राणवायु और स्वरतंत्री के आधार पर किया जाता है।

प्राणवायु के आधार पर हिन्दी व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

प्राणवायु मूलतः 'ह' और 'ह' वाली ध्वनि में होती है। प्राणत्व को पहचानने का सरलतम तरीका हिन्दी ध्वनियों को रोमन में लिखकर यह देखना है कि उसमें कहां-कहां 'हकार' या एच लगा है। जहां-जहां 'ह' लगा होगा वहां-वहां महाप्राण ध्वनि होगी।

हिन्दी में पांचों वर्गों की प्रत्येक दूसरी और चौथी ध्वनि महाप्राण ध्वनियां हैं तथा पहली, तीसरी और पांचवीं ध्वनियां अल्पप्राण हैं। इसके अतिरिक्त श, ष, स और ह ध्वनियां हैं पर य, र, ल, व ध्वनियां अल्पप्राण हैं।

कुल मिलाकर प्राणत्व के आधार पर हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जाता है।

अल्पप्राण ध्वनियां

क, ग, ङ,
च, ज, ञ,
ट, ड, ण, ड़,
त, द, न,
प, ब, म,
य, र, ल, व, स

महाप्राण ध्वनियां

ख (KH)	घ (CH)
छ (CH)	झ (JH)
ठ (TH)	ढ (DH)
थ (TH)	ध (DH)
फ (PH)	भ (BH)
श (SH)	ष (SH)
ह (HA)	ड (DA)

स्वरतन्त्री के आधार पर हिन्दी व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण

स्वरतन्त्री के आधार पर हिन्दी व्यंजन ध्वनियां अघोष और घोष ध्वनियों में वर्गीकृत होती हैं।

अघोष ध्वनियां

हिन्दी की व्यंजन ध्वनियों में प्रत्येक वर्ग की पहली दोनों ध्वनियां—क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ और इनके अतिरिक्त श, ष, स ध्वनियां स्वरतन्त्री के आधार पर अघोष ध्वनियां हैं। 'ह' प्रत्येक स्थिति में अघोष ध्वनि है, किन्तु विसर्ग (:) ह घोष ध्वनि है। ख, फ भी अघोष ध्वनियां हैं।

घोष ध्वनियां

हिन्दी के प्रत्येक वर्ग की तीसरी, चौथी और पांचवीं घोष ध्वनियां हैं। इनमें ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न और ब, भ, म जैसी पन्द्रह ध्वनियों के अतिरिक्त य, र, ल, व तथा ड़, ढ़ ध्वनियां घोष ध्वनियां हैं।

ध्वनि-परिवर्तन : प्रस्ताविक

ध्वनि-परिवर्तन बहुकालक्रमी (Diachronic) स्वन विज्ञान (Phenology) का विषय है। हमारी सृष्टि परिवर्तनशील है। हम सभी परिवर्तनशील हैं। ऐसे में हम मनुष्यों की भाषा भी परिवर्तनशील है। भाषा जिन घटक-तत्त्वों से निर्मित होती है, उसके वे सभी घटकतत्त्व-प्रोक्ति, अर्थ, वाक्य-रचना, रूप-रचना, शब्द भण्डार और ध्वनि परिवर्तनशील है।

ध्वनि में होने वाले परिवर्तन को यदि पुरातनपंथी ध्वनिविकार (Phonetic decay) के रूप में देखते हैं, तो नवीन पंथी उसे ध्वनि विकास कहते हैं। इस प्रकार 'विकार और विकास' दोनों परिवर्तन में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। 'विकास' को परिवर्तन के पर्याय के रूप में व्यक्त किया जाता है।

1.3.5 निष्कर्ष

ध्वनियों के परिवर्तन के उपयुक्त कारणों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि ध्वनि-परिवर्तन के कारण सीमित न होकर असीम हैं। ये आंतरिक भी हैं और बाह्य भी। ये ऐतिहासिक भी हैं और भौगोलिक भी। ये भाषा के वक्ता और श्रोता दोनों रूपों से सम्बद्ध हैं। ये मनुष्य की प्रयत्न लाघवी प्रवृत्ति के परिचायक भी हैं और परिवर्तनों को 'विकार' या मात्रिक अशुद्धि के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता, अपितु भाषा की जीवंतता के अनिवार्य तत्त्व के रूप में उसके विकासगामी चिह्न के रूप में इन्हें स्वीकार करने की आवश्यकता होती है। विश्व की सभी भाषाओं में ध्वनियां अतीत में परिवर्तित हुई हैं, वर्तमान में भी परिवर्तित हो रही हैं और भविष्य में परिवर्तित होती रहेंगी।

1.3.6 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी ध्वनियों के वर्गीकरण के क्या आधार हैं?
2. ध्वनि परिवर्तन की प्रमुख दिशाएं क्या हैं?
3. ध्वनि परिवर्तन के कारणों पर विचार करें।

पाठ संख्या–**1.4**

ध्वनि परिवर्तन : प्रकार, दिशाएं, कारण

1.4.1 ध्वनि परिवर्तन : स्वरूप स्पष्टीकरण
1.4.2 ध्वनि परिवर्तन : प्रकार निर्देश
1.4.3 ध्वनि परिवर्तन
1.4.4 ध्वनि परिवर्तन की दिशाएं
1.4.5 ध्वनि परिवर्तन के कारण
1.4.6 सारांश
1.4.7 बोध प्रश्न।

1.4.1 ध्वनि-परिवर्तन : स्वरूप स्पष्टीकरण

ध्वनि-परिवर्तन में किसी प्रधान स्वनिम-गुच्छ से किसी दूसरे स्वनिम या स्वनिम-गुच्छ में होने वाले ऐतिहासिक परिवर्तन अथवा अन्तरण का रेखांकित-वर्णन किया जाता है। विकल्पात्मक रूप में वह पद अपनी प्रक्रिया में स्थायी के लोप को भी समाविष्ट करता है। ध्वनि परिवर्तन कब होता है और कैसे होता है इस संदर्भ में कोई स्थायी नियम नहीं है। ध्वनि-परिवर्तनों के आरम्भ में उसके विषय में जानना असंभव है, क्योंकि ध्वनि में होने वाले परिवर्तनों को तभी रेखांकित किया जा सकता है जब ध्वनि में परिवर्तन हो चुके होते हैं। वस्तुतः कोई भी ध्वनि-परिवर्तन तब सम्पन्न हो चुका होता है जब किसी सामाजिक इकाई, राष्ट्र, राज्य, नगर आदि के भाषा-भाषी समुदाय के द्वारा वर्तमान समय-रूपी 'व' बिन्दु से ध्वनि-व्यवहार स्पष्ट तौर पर भिन्न दिखने लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि ध्वनि का परिवर्तन किसी 'संघटित' या 'सुव्यवस्थित' रूप में नहीं होता है। यहीं यह बात भी देखने की है कि ध्वनि का परिवर्तन सदैव सामूहिक होता है। वर्तमान समय बिन्दु पर दिखने वाले वैयक्तिक उच्चारण भेद को किसी भी रूप में ध्वनि परिवर्तन नहीं माना जा सकता।

भाषा में ध्वनि–परिवर्तन कभी भी तीव्रता के साथ नहीं होता। इसकी गति सदैव धीमी रहती है। संस्कृत का 'अग्नि' शब्द आज हिन्दी में आग बन गया है। पर इसके बीच के और परिवर्तन रूप हैं – अग्नि>अग्नि>आग>आग। इस तरह ध्वनियों के परिवर्तन में शताब्दियां लग जाती हैं। पर कोई भी ध्वनि-परिवर्तन भाषा की मूल विशेषता को कभी बाधित नहीं करता है। आरम्भ में परिवर्तन विकल्पात्मक भी रहता है। अतः पहले वह प्रवृत्ति या झुकाव के रूप में उपस्थित होती है पर बाद में स्थिर हो जाने पर वहीं परिवर्तन हो जाता है। ध्वनि परिवर्तन जब तक विशिष्ट स्थिति में किसी विशिष्ट ध्वनि का होता है तो उस भू-भाग में वैसे ही ध्वनिगत परिवेश में उस प्रकृति की अन्य ध्वनियां भी बदल जाती हैं। ध्वनि-परिवर्तन को रेखांकित करने वाले तीन तथ्य प्रमुख हैं–1. स्थलविशेष 2. काल-विशेष और 3. परिस्थिति-जन्यता।

यद्यपि ध्वनि का विकास धीरे-धीरे होता है तथा किसी भी भाषा समुदाय के बीच व्यापकता में सामने आता है। ऐसा नहीं है कि भाषा-भाषी समुदाय के पचास परिवारों में तो परिवर्तन पाया जाएगा पर दूसरे पचास परिवारों में ऐसा परिवर्तन नहीं मिलेगा। यदि ऐसा कोई अन्तर नज़र आता है तो निश्चित ही यह ध्वनि-परिवर्तन का नहीं, स्थानिक भिन्नता का उदाहरण होगा।

ध्वनियों का परिवर्तन वाक्य अथवा शब्द की संघटना में उसकी स्थिति के अनुरूप होता है। स्थिति से आशय है कि शब्द के आरम्भ में, बीच में या अन्त में, उसके आगे-पीछे समान ध्वनियां हैं या असमान। वे अपने आप में स्वर हैं या व्यंजन। आशय है कि संघटना में अलग-अलग रूप में स्थित एक ही ध्वनि का परिवर्तन अलग-अलग रूप में होता होगा। एक जैसा परिवर्तन केवल एक ही तरह की स्थिति रहने पर सम्भव होगा।

ध्वनियों का परिवर्तन पुरानी पीढ़ी के बोलने वालों के उच्चारण से नियत होता है और उसी के अनुरूप एक विशेष दिशा की ओर गतिशील होता है। यह ध्वनि-परिवर्तन की परिवेश-निर्भरता है। ध्वनि के परिवेश से आशय किसी भाषा में ध्वनि के उच्चारण की प्रलम्बता से है। उच्चारण के शब्द-विशेष में उसके आरम्भ में या मध्य में उच्चरित होने से है। यह भी विचारणीय है कि उसके शब्द-विशेष में उसके आरम्भ में या मध्य में उच्चरित होने से है। यह भी विचारणीय है कि उसके बाद में या पहले आने वाली ध्वनियां अपनी प्रवृति में स्वर है या व्यंजन। यदि स्वर हैं तो अग्र, पश्च, मध्य, संवृत, विसंवृत, ह्रस्व, दीर्घ, वृत्ताकार, चिपटे आदि किस प्रकार के हैं। यदि व्यंजन हैं तो स्पर्श, संघर्षी, स्पर्श-संघर्षी, अल्पप्राण, महाप्राण, घोष, अघोष, उष्म आदि किस प्रकार के हैं। वस्तुतः इन सबका परिज्ञान ही ध्वनि का परिवेश परिज्ञान होता है, जिस पर ध्वनियों का परिवर्तन निर्भर करता है। ध्वनि परिवर्तन से कभी-कभी परिस्थिति के अनुसार भाषा-विशेष में बिल्कुल नई ध्वनि आ जाती है तो कभी-कभी विभिन्न ध्वनियों और विभिन्न अर्थ वाले शब्द समान ध्वन्यात्मक हो जाते हैं। भले ही उनमें अर्थ का अन्तर ज्यों का त्यों रह जाता है। काम-काम, हार-हार, खोया-खोया, गया-गया, जाना-जाना जैसे शब्द इसके उदाहरण हैं।

1.4.2 ध्वनि परिवर्तन : प्रकार निर्देशन

ध्वनि परिवर्तन के प्रकार को दो रूपों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। 'क' प्रकार और 'ख' प्रकार। इनमें 'क' प्रकार के अन्तर्गत 1. सामान्य परिवर्तन प्रकार तथा 2. आकस्मिक परिवर्तन प्रकार का उल्लेख किया जाता है तथा 'ख' परिवर्तन के अन्तर्गत 1. स्वयम्भू, 2. परिस्थितिजन्य तथा 3. स्फुट परिवर्तन।

ध्वनि परिवर्तन का 'क' प्रकार

हकिट ने दो भिन्न प्रकारों के ध्वनि परिवर्तनों का जहां उल्लेख किया है, वहीं भिन्नता को दर्शाने वाले पारिभाषिक अभाव को स्वीकार किया है। हकिट के शब्दों में इन्हें 1. ध्वनि परिवर्तन (Sound Change) और 2. आकस्मिक ध्वनि परिवर्तन (Sudden Sound Change) जैसे नाम दिये जा सकते हैं।

1.4.3 ध्वनि-परिवर्तन (Sound Change)

इस प्रकार का परिवर्तन उच्चारण और श्रवण के अभ्यास का धीरे-धीरे होने वाला परिवर्तन है, जो प्रत्येक मानव-समुदाय में निरन्तर होता है। कोई भी वक्ता अपनी कालावधि में शब्दों को सीखता, उनका व्यवहार करता और उन्हें अगली पीढ़ी के लिए बिना थोड़ा भी यह समझे हुए कि उनका उच्चारण अब किसी परिवर्तन की प्रक्रिया से गुज़र रहा है उसे आगे बढ़ा देते हैं। पर हज़ारों वर्षों के बाद मंदगति से होने वाला परिवर्तन स्पष्ट संरचनात्मक अन्तर लेकर उपस्थित होता है। ध्वनि-परिवर्तन की प्रक्रिया की यह मन्दता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज तक किसी ने भी ध्वनि को परिवर्तित होते नहीं देखा है। हम केवल इनके परिणामों के आधार पर इसकी पड़ताल करते हैं।

1. आकस्मिक ध्वनि-परिवर्तन (Sudden Sound Change)

हकिट के अनुसार यह पूर्व निर्दिष्ट ध्वनि परिवर्तन से भिन्न है। नारमेन की जीत के बाद अंग्रेजी भाषा-भाषी के बीच सैंकड़ों नारमेनी फ्रांसीसी शब्द आ गये। इनसे अधिक शब्दों का उच्चारण अंग्रेजी से अलग था। इसके अधिक शब्द अंग्रेजी और फ्रांसीसी दोनों ही भाषाओं में व्यवहृत होने लगे। पर बहुत से अंग्रेज 'वी' (V) से आरम्भ होने वाले फ्रांसीसी शब्द को गलत रूप में ही उच्चरित करते थे। शायद वे अपनी भाषा

के आरम्भिक अघोष 'फ' का उच्चारण करते थे, न कि फ्रांसीसी 'व' (V) का। उनमें कुछ तो कभी भी इस नई भिन्न ध्वनि को उच्चरित करने में समर्थ नहीं हो सके, शब्दों के आरम्भ में उपस्थित होने वाले अघोष 'फ' और 'व' (V) के अन्तर को अंग्रेज दूर नहीं कर सके, क्योंकि उनकी आरम्भिक स्थिति केवल अघोष महाप्राण की होती है। हकिट के अनुसार ध्वनि परिवर्तन की ऐसी चीज़ें आज घट रही हैं। उदाहरण के लिए कुछ अमरीकी जो जर्मन सीख रहे हैं वे अपनी अंग्रेज़ी में जर्मनी शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते।

ध्वनि-परिवर्तन का 'ख' प्रकार

इस वर्ग के अन्तर्गत ध्वनि-परिवर्तन को तीन प्रकारों में विभाजित किया जाता है—

1. स्वयं-भू ध्वनि परिवर्तन (Unconditioned phonetic change)
2. परिस्थिति-जन्य ध्वनि परिवर्तन (Conditioned phonetic change)
3. स्फुट परिवर्तन (Sporadic change)

2. स्वयं-भू ध्वनि-परिवर्तन

यह ध्वनि-परिवर्तन का वह प्रकार है, जिस में ध्वनियों का कारण अज्ञात हुआ करता है। इसमें एक जैसी स्थिति में भी परिवर्तन एक जैसा न होकर अलग-अलग रूपों में होने लगता है, उदाहरण के लिए हिन्दी में प्रचलित 'चाक' और 'सांप' शब्दों के रूप 'चक्र' और 'सर्प' शब्द थे। प्राकृत में इनका विकास 'चक्क' और 'सप्प' हुआ। पर आगे चलकर 'चाक' विकसित हुआ। इस आधार पर 'सप्प' से भी सांप रूप ही विकसित और स्वीकृत होना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं होकर 'सप्प' से साप और फिर सांप बन गया। यहां अकारण अनुनासिकता आ गयी। अतः सर्प का सांप में हुआ ध्वनि-परिवर्तन सामान्य न रहकर स्वयंभू ध्वनि-परिवर्तन के रूप में उपस्थित हुआ।

3. परिस्थिति जन्य ध्वनि-परिवर्तन

वास्तव में यह ध्वनि-परिवर्तन का वह प्रकार है जिसके कारण दिये जाते हैं। ऐसे परिवर्तन सामान्य रूप में देखने को मिलते हैं। आज अंग्रेजी 'कनो' (Know) 'नो' के रूप में उच्चरित होता है। अब इसकी आरम्भिक 'क' ध्वनि उच्चारण में लुप्त हो गई है, जिसका कारण उच्चारण सुविधा को माना जाता है। उदाहरण के लिए मध्यकालीन अंग्रेजी डेके आधुनिक अंग्रेजी में 'डार्क' बन गया। इसी तरह 'स्टेरे' शब्द आधुनिक-अंग्रेजी में 'स्टार' बन गया। ये ऐसे ध्वनि-परिवर्तन हैं, जो एक निश्चित स्थिति में उपस्थित होते हैं।

4. स्फुट परिवर्तन

जब स्वनिमों का एक विशिष्ट अनुक्रम ऐसा परिवर्तन उपस्थित करता है जो दूसरे स्वनिम-अनुक्रम में नहीं हो तब उसे स्फुट परिवर्तन कहते हैं। ध्वनि-विज्ञानियों के अनुसार परिस्थिति जन्य परिवर्तन और स्फुट के बीच परिवर्तन ही हो जाता है। 'समीकरण' और 'विषमीकरण' इसके उदाहरण हैं। चक्र का 'चक्का' रूप समीकरण का उदाहरण होगा तथा 'दरिद्र' का दिरद्दर रूप विषमकरण का उदाहरण होगा। समीकरण में एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को 'भग-कोट न्याय' से प्रभावित करती हैं। इसके अनेक प्रकार होते हैं। स्वर और व्यंजन ध्वनि की दृष्टि से इसके 'पुरोगामी' और 'पश्चगामी' दो भेद होते हैं। पुनः निकट और दूर के आधार पर इसके 'पार्श्ववर्ती' और 'दूरवर्ती' दो भेद किये जाते हैं। 'भ्रष्ट' का 'भरसट' दूरवर्ती पुरोगामी व्यंजन समीकरण का उदाहरण है। सर्प का सप्प और धर्म का धम्म पार्श्ववर्ती पश्चगामी व्यंजन का उदाहरण है। अऊर का 'अअर' तथा अंगुली का उंगली रूप है। पार्श्ववर्ती पश्चगामी स्वर-समीकरण के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते हैं।

1.4.4 ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएं

ध्वनि-परिवर्तन की दिशा विचार करते हुए हकिट ने प्रश्न उठाया है कि क्या ध्वनि-परिवर्तन की एक सामान्य दिशा निर्दिष्ट की जा सकती है तब वर्तमान तकनीकी और ध्वनि-परिवर्तन की विशेष प्रकृति अथवा विशेष परिगामी संरचनात्मक परिवर्तन को देखते हुए यह स्पष्ट करता है कि ध्वनियों में होने वाले परिवर्तन की वैसी कोई सामान्य दिशा स्पष्ट नहीं की जा सकती। फिर भी स्वनिमिक पुनः संरचना के उन बहुतेरे

उदाहरणों से जो ध्वनि-परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप एकत्र होते हैं, कुछ परिणाम बारम्बार प्राप्त होते हैं। फलतः वे दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रायिक (बारम्बार उपस्थित होने वाले) हैं पर एचीसन की धारणा है कि यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी में विचारकों ने यह प्रयत्न किया कि वे यह सिद्ध कर सकें कि कुछ स्वन-शास्त्रीय रूप की अपेक्षा अधिक सुलभ होते हैं, पर इसे पूरी तरह प्रमाणित नहीं किया जा सका। उसके अनुसार बीसवीं सदी के कुछ भाषाविदों ने भाषा-परिवर्तन के विषय में एक पाक्षिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार संश्लेषणात्मक भाषा स्वरमूलक और व्यंजनमूलक होती है। पुनः अगली और पिछली ध्वनि को प्रभावित करने की दृष्टि से इसके प्रति उन्मुख होती है। निश्चय की बहुतेरी भारतीय भाषाएं स्वतन्त्र रूप में संश्लेषणात्मक स्थिति की ओर उन्मुख दिखती हैं। जिससे इस दृष्टिकोण की सम्पुष्टि होती है। पर एचसिन यह मानते हैं कि इस सन्दर्भ में पक्के ठोस और स्थायी प्रमाण बहुत कम परिणाम में प्राप्त हुए हैं। यहां दिशा का अर्थ भाषा-परिवर्तन में सामान्य विकासात्मक प्रवृत्ति को रेखांकित करने के अर्थ में लिखा जाता है।

भाषा-परिवर्तन की दिशा का दूसरा आशय वैसी प्रवृत्ति-विशेष से है जिस रूप में किसी भाषा में प्रायः ध्वनि परिवर्तन उपस्थित होता है। इस अर्थ में ध्वनि-परिवर्तन की चार दिशाएं होती हैं।

1. आगम 2. लोप 3. विपर्यय 4. विकार।

आगम

ध्वनि आगम वह दिशा है-जिसमें प्रचलित शब्दों में कोई ऐसी नई ध्वनि आ जाए जो पहले से उपस्थित नहीं हो। ध्वनि आगम के स्वर और व्यंजन-मूलक दो भेद होते हैं। पुनः दोनों भेदों के आदि, मध्य और अन्त्यस्थान की दृष्टि के तीन-तीन प्रभेद हो जाते हैं।

लोप

ध्वनि लोप ध्वनि-परिवर्तन की वह दिशा है, जिसमें पहले से उपस्थित ध्वनि अध्याहत या लुप्त हो जाती है। इसके भी स्वर और व्यंजन मूलक दो भेद होते हैं तथा प्रत्येक भेद के पुनः आदि, मध्य और अन्त्य-स्थान की दृष्टि से तीन-तीन प्रभेद होते हैं।

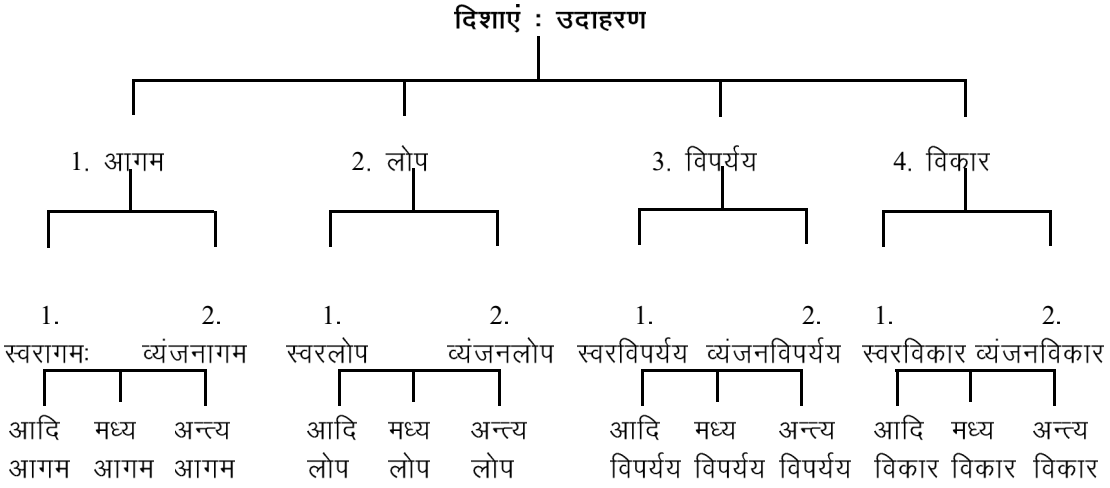

विपर्यय

ध्वनि-विपर्यय ध्वनि-परिवर्तन की वह दिशा है, जिसमें शब्द-विशेष में पहले और बीच की ध्वनि आगे-पीछे हो जाती है। इसमें शब्द-विशेष में ध्वनि के स्थान विपर्यय हो जाते हैं, उलट जाते हैं। इसके भी स्वर और व्यंजन मूलक दो भेद होते हैं, जिनके पुनः आदि, मध्य और अन्त्यस्थान की दृष्टि से तीन-तीन प्रभेद हो जाते हैं।

विकार

ध्वनि-विकार, ध्वनि-परिवर्तन की वह दिशा है, जिसमें एक ध्वनि का रूप-परिवर्तन दूसरी ध्वनि में जाता है इसके भी स्वर एवं व्यंजन मूलक दो भेद होते हैं, जिनके पुनः आदि, मध्य और अन्त्यस्थान की दृष्टि से तीन-तीन प्रभेद हो जाते हैं। ध्वनि परिवर्तन की इन दिशाओं को आरेख संख्या-1 से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

आरेख संख्या-1

आदिस्वरागम	—	स्त्री	>	इस्त्री
		स्कूल	>	एस्कूल
मध्यस्वरागम	—	वर्ष	>	वरिस
		दर्द	>	दरद
अन्त्यस्वरागम	—	दवा	>	दवाई
		मथूक	>	महुआ
आदिव्यंजनागम	—	ओष्ठ	>	होंठ
		अस्थि	>	हड्डी
मध्यव्यंजनागम	—	लाश	>	लहाश/लहास
		शाप	>	श्राप
अन्त्यव्यंजनागम	—	रंग	>	रंगत
		भौं	>	भौंह
आदिस्वरलोप	—	आभ्यंतर	>	भीतर
		अपि	>	भी
		अरवट्ट	>	रहट
मध्यस्वरलोप	—	सुरभि	>	सुम्भि (अर्ध मागधी रूप)
		गरदन	>	गर्दन
अन्त्यस्वरलोप	—	फ्रैंच Affair	>	अंग्रेजी Affair
		आम	>	आम्
(हिन्दी में अन्त्य स्वर का उच्चारण में लुप्त हो जाना हिन्दी की प्रकृति है।)				
आदिव्यंजनलोप	—	स्कन्ध	>	कन्था
		शमशान	>	मसान
मध्यव्यंजनलोप	—	दंशित	>	डसइ
		कोकिल	>	कोइल
अन्त्यव्यंजनलोप	—	पश्चात्	>	पश्च (अपभ्रंश)
आदिस्वरविपर्यय	—	अम्लिका	>	इमली
मध्यस्वरविपर्यय	—	एरंड	>	रेडी
		शमश्रु	>	मूंछ
अन्त्यस्वरविपर्यय	—	पागल	>	पगला
आदिव्यंजनविपर्यय	—	लद्युक	>	हलुक
		लखनऊ	>	नखलऊ
मध्यव्यंजनविपर्यय	—	गरूड़	>	गडुर (बी)
अन्त्यस्वरविपर्यय	—	चिह्न	>	चिन्ह
आदिस्वरविकार	—	इक्षु	>	उक्खु

मध्यस्वरविकार	—	पुस्तक	>	पोत्थ्य
अन्त्यस्वरविकार	—	कमल	>	कमलु
आदिव्यंजनविकार	—	शुष्क	>	सूखा
मध्यव्यंजनविकार	—	निद्रा	>	नींद
		अमीर	>	अहीर
अन्त्यव्यंजनविकार	—	अद्य	>	आज

1.4.5 ध्वनि-परिवर्तन के कारण

ध्वनि-परिवर्तन के कारण पर स्कैण्डेनेवियन विद्वान् जैम्म आटो हैरो येस्पर्सन ने विस्तारपूर्वक विचार किया है। उसने संरचना भूगोल, राष्ट्रीय मनोविज्ञान, उच्चारणगति, तीव्र परिवर्तन का काल प्रयत्नलाघव-सिद्धान्त ध्वनि-परिवेश, दुर्बलता, मूल्य का सिद्धान्त, कारक और लिंग-पद्धति का लोप, बलाघात, अभिव्यक्ति की कटवां प्रवृत्ति अथवा संक्षेपीकरण, भावावेग सुश्राव्यता ऐन्द्रिय प्रभाव, उच्चारण-दोष, अतिशय शुद्धि का आग्रह, संध्यात्मकता, मिथ्यासादृश्य, ध्वनि नियमों का विस्तार, प्रतिक्रिया आदि का उल्लेख किया है। येस्पर्सन द्वारा निर्दिष्ट-परिवर्तन के उक्त कारणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्वनि के परिवर्तन के अनेक कारण हैं। किसी एक ध्वनि के परिवर्तन के कारण की खोज करने के क्रम से यह स्पष्ट विदित होता है कि एक ध्वनि के परिवर्तन में भी ऐसे अनेक कारण सक्रिय हो सकते हैं, जिनका सभी स्थलों पर निर्देश सहज सम्भव नहीं है। ऐसा भी नहीं कि इन कारणों के आधार पर भविष्य के विषय में निश्चित रूप में कुछ निर्देश किया जा सके।

प्रायः ध्वनि विज्ञानियों ने ध्वनि-परिवर्तन के कारणों का आन्तरिक और बाह्य आधार पर वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। आन्तरिक कारण में जहां स्वराघात आदि का उल्लेख किया जाता है वहीं बाह्य कारण के अन्तर्गत भौगोलिक परिवेश तथा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक जैसी विविध परिस्थितियों को रेखांकित किया जाता है। अंतर कारण भाषा के अधिगम-अनुकरण पर आधारित होता है। भाषा उच्चारण के सहारे सीखी जाती है, जिसमें उच्चारण यंत्र की महती भूमिका होती है। किन्तु अनुकरण करने वाला सदैव ठीक-ठाक अनुकरण नहीं कर पाता है। फलतः ध्वनियों में परिवर्तन होने लगता है। पर ध्वनि-परिवर्तन के कारणों को बिना ऐसा विभाजन किये देखना अधिक उपयुक्त और समीचीन है।

वाक्-यन्त्र की विभिन्नता

मनुष्य में वाक्-यन्त्र की विभिन्नता पाई जाती है। इस विभिन्नता के कारण सभी व्यक्तियों का उच्चारण एक सा नहीं हो पाता और एक दूसरे के उच्चारण में अन्तर स्पष्ट होने लगता है। यही अन्तर जब प्रवृत्ति के रूप में होने लगता है परिवर्तन बन जाता है। यद्यपि आजकल इस कारण को महत्त्व नहीं दिया जाता, किन्तु यह सच है कि इसे पूरी तरह निर्मूल भी नहीं माना जा सकता है।

श्रवणेन्द्रिय की विभिन्नता

जैसे वाक्-यन्त्र की विभिन्नता के कारण ध्वनि बदल जाती है वैसे ही श्रवणेन्द्रिय की विभिन्नता भी ध्वनि-परिवर्तन को प्रभावित करती है। वस्तुतः ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

अनुकरण की अपूर्णता

अनुकरण की अपूर्णता के कारण ध्वनि में परिवर्तन के अनेक उदाहरण 'रोटी' को 'लोटी' 'रुपया' को 'मुपया' कहने में प्राप्त होते हैं। यदि अनुकरण की अपूर्णता हो और इसके साथ अज्ञान भी जुड़ जाए तो ध्वनि-परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है।

प्रयत्न लाघव

ध्वनि परिवर्तन का मुख्य कारण लाघव को माना जाता है। श्रम में कटौती करना मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है। मनुष्य कम श्रम करके अधिकाधिक फल और महत्त्व प्राप्त करना चाहता है। येस्पर्सन की यही Ease Theory है। खेत के बीच से गुज़रते समय हम जिन रास्तों और पगडण्डियों पर चलते हैं, वे इस

प्रयत्न लाघव का ही परिणाम है। इसी तरह परीक्षार्थी परीक्षा की तैयारी के लिए पुस्तकों का आधार लेकर कुंजियों (Notes) के आधार पर अपनी तैयारी करता है। इसी प्रकार भाषा में उच्चारण में प्रयत्न में लाघव करने के कारण अनेक ध्वनियों का परिवर्तन हो जाता है। उच्चारण में परिवर्तन का महा कारण प्रयत्नलाघव ही है। इसके अन्तर्गत अनेक छोटे कारणों का सहज समावेश हो जाता है।

ध्वनि-परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण भावातिरेक है

भाव का अतिरेक मूलतः प्रेम, क्रोध, घृणा की घड़ियों में देखने को मिलता है। यद्यपि इसके द्वारा होने वाले ध्वनि परिवर्तन को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाता फिर भी ध्वनियों का यह परिवर्तन शब्दों के मूल को विकृत तो कर ही देता है। प्रेम के भावातिरेक में 'बाबू' का 'बबुआ', 'बेटी' का 'बिट्टो', 'दुलारी' का 'दुल्लो', 'चाची' का 'चचिया', 'दीदी' का 'दिदिया' जैसे रूप सुनने को मिलते हैं। मूलतः भावातिरेक के कारण होने वाले परिवर्तन संज्ञामूलक शब्दों में पाये जाते हैं या संबंध सूचक शब्दों में

मिथ्या सादृश्य

वाद्रियेज के अनुसार यह उस पद्धति का नाम है, जिसमें परिचित रूप की तरह मस्तिष्क एक नया रूप, एक नया तत्त्व अथवा भावाभिव्यक्ति की एक नयी शैली स्वतः गढ़ लेता है, मिथ्या सादृश्य में ज्ञान शब्द की जो ध्वनि पहले से उपस्थित होती है उसकी मिथ्या समानता के आधार पर दूसरे शब्दों के उच्चारण में होता है, पर उनका कारण पहले शब्दों का मूल ध्वनि रूप होता है। 'स्वर्ग' शब्द में अन्तस्थ उस ध्वनि का आगम हो जाता है। पहले परिवर्तन तो दूसरे शब्द में अन्तस्थ 'र' का स्पर्श ग के साथ संयोग होता है। इसके मिथ्या सादृश्य पर नरक शब्द की ध्वनि में परिवर्तन हो गया है और यह शब्द नर्क हो गया है। यहां अन्तस्थ 'र' का स्पर्श के साथ इस सादृश्य के कारण संयोग हो गया है। तद्रूप के आधार पर, विद्रूप, देहाती के आधार पर 'शहराती' तथा अंग्रेजी में Will में बनने Would के मिथ्या सादृश्य के आधार Can से बनने वाले शब्द इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं। निर्गुण के आधार पर सगुण हो जाना तथा 'पिंगला' के आधार पर इड़ा का इंगला हो जाना भी इसी का उदाहरण है।

भौगोलिक विभाजन

ध्वनि-परिवर्तन सिद्धांत हेनरी मेनर और वेन्फी के द्वारा प्रस्तावित हुआ था, जिसे बाद में ग्रहण और विकसित किया। प्रायः यह मान्यता है कि गर्म स्थान से ठण्डे स्थान पर जाकर स्थिर होने वाले जाति के उच्चारण में विवृत ध्वनियों का विकास नहीं हो पाता है और उनकी ध्वनियों के उच्चारण में संवृत की प्रकृति अधिक लगती है। इसके विपरीत यदि किसी भाषा-भाषी समुदाय का ठंडे स्थल से गर्म स्थल की ओर आगमन होता है तो स्थिति पहले से ठीक विपरीत होती है और गर्म देश में उच्चारण से विवृत ध्वनियों की ओर रुझान देखी जाती है। स्वर के उक्त परिवर्तन के अतिरिक्त व्यंजन ध्वनि, 'स' में विभिन्न भौगोलिक स्थितियों के कारण होने वाले ध्वनि-परिवर्तन के भी अच्छे उदाहरण प्राप्त होते हैं। मागधी प्राकृत में ऊष्म 'ष' तालव्य श में बदल जाता है तथा दन्त्य 'स' तालव्य 'श' में रूपान्तरित हो जाता है। जैसे मागधी में शुष्क तथा लुप्त का लूप्त रूप हो जाता है किन्तु अर्द्ध मागधी में ऊष्म 'श' ऊष्म 'स' ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है।

जैसे 'श्रावक' का 'सावक' और 'वर्ष' का 'वास' में होने वाला ध्वनि-परिवर्तन। किन्तु बहुतेरे विद्वान् भौगोलिक विवाद तथा प्रभाव के कारण ध्वनि में होने वाले परिवर्तन से सहमत नहीं है। सस्यूर ने इसका खंडन करते हुए यह उदाहरण प्रस्तुत किया है कि स्केण्डेनेविया व्यंजनों भरे मुहावरे इटली के मुहावरों की अपेक्षा अधिक स्वीकृत हैं, तो उत्तरी फ्रांसीसी भाषाओं की तुलना में दक्षिण फ्रांस की कुछ भाषाएं व्यंजन गुच्छों के प्रति अधिक उदार हैं। येस्पर्सन भी इस सिद्धांत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि पर्वतीय प्रदेश में रहने वालों को प्रायः अधिक श्रम करना पड़ता है, जिससे फेफड़ों पर निर्भर होने की बात गलत और लचर है। इस प्रकार ये लोग भौगोलिक परिवर्तन या प्रभाव को ध्वनि-परिवर्तन का कारण मानने का विरोध करते हैं।

ऐतिहासिक परिस्थितियां

ध्वनि-विज्ञान के जानकारों का यह स्पष्ट मत है कि युद्ध, सन्धि, सीमा-विवाद, भू भागों का विभाजन

जैसे तत्त्व जब एक भाषा-भाषी क्षेत्र को अनेक खण्डों में बांट देते हैं तो इनके भाषा-भाषियों का पारस्परिक सम्पर्क टूटने लगता है और परस्पर असम्पृक्त विभिन्न राजनीतिक प्रकार्यों के भाषा-भाषियों में उच्चारण अभ्यास बदलने लगता है और ध्वनि-परिवर्तन होने लगते हैं। उदाहरण के लिए भारत और पाक का विभाजन पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी का विभाजन उत्तरी वियतनाम का विभाजन उत्तरी कोरिया और दक्षिणी कोरिया का विभाजन भू-भागों के विभाजन के कारण ध्वनियों में दीख पड़ने वाले परिवर्तनों को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

समाज-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक प्रभाव

ध्वनियों में परिवर्तन के मूल में कभी-कभी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावनाएं भी क्रियाशील होती हैं। ऐसी स्थिति में 'बनारस' में 'वाराणसी' बन जाता है और 'भैलसा' विदिशा में बदल जाता है। सांस्कृतिक जागरूकता के ऐसे ही प्रभाव में 25 मई 1956 को 'बनारस' 'वाराणसी' हो गया। शुंग और गुप्तकाल में ऐसी ही पुनरुत्थान वाली भावनाओं के कारण पालि-प्रकृत भाषा में विभिन्न ध्वनि-परिवर्तन देखने को मिलते हैं-

राजनीतिक आक्रमण, जय, पराजय और व्यापारिक-संस्कृति संबंध भी ध्वनि के परिवर्तन में सहायक सिद्ध होते हैं भाषाविदों की मान्यता है कि पहले योरोपीय परिवार की भाषा में 'ट' वर्ग की ध्वनियां नहीं होती थी इन ध्वनियों का आगम द्रविड़ों के सम्पर्क के कारण हुआ। इसी प्रकार फ़ारसी की क़, ख़, ग़, ज़ ध्वनियां हिन्दी में क, ख, ग, ज में बदल गई।

भ्रामक या लौकिक व्युत्पत्ति

प्रायः कई शब्दों को भ्रमवश उनके गलत मूल रूप से जोड़कर देखने के बाद भी ध्वनियों में परिवर्तन परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए अरबी का इन्तिकाल हिन्दी में अन्तकाल हो गया। इसके मूल में आखरी समय का अर्थ लेने के कारण इसे अन्तकाल मान लिया गया। इसी तरह एडवांस का अठवांस कहने, चार्जशीट को चासीट कहने के मूल में भ्रमिक व्युत्पत्ति ही ध्वनि परिवर्तन का कारण है।

उच्चारण की शीघ्रता

उच्चारण की शीघ्रता भी ध्वनियों में परिवर्तन कर देती है। उन्होंने का उन्हें, पंडित जी का पंडि जी, मास्टर साहिब का 'मास्साहिब' जैसे रूप इस कारण से होने वाले ध्वनि-परिवर्तन को दर्शाते हैं।

अज्ञान

अज्ञान ध्वनि परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। जिन शब्दों के सही रूप से एक भाषा-भाषी समुदाय परिचित नहीं होता अज्ञानवश वहां उसके उच्चारण में ध्वनि-परिवर्तन करता है। यह परिवर्तन धीरे-धीरे स्थायी हो जाता है और इस तरह अज्ञान ध्वनियों में बदलाव का कारण बनता है। 'इंजीनीयर' का इंजियर, 'ऐक्सप्रैस' का एसप्रैस, 'कम्पाउंडर' का कम्पोडर जैसे रूप ऐसे ध्वनि-परिवर्तन को स्पष्ट तौर पर रेखांकित करते हैं।

शब्दों की असाधारण दीर्घता के कारण, 'चायगर्म' का चारम बन जाता है। 'यूनाईटेड स्टेट ऑफ अमेरिका, यू. एस. ए. तथा पटियाला ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन', 'पेप्सू' कहलाता है। ऐसे ध्वनि-परिवर्तनों के मूल में असाधारण लम्बाई को बोलने में सम्भाल सकने की असमर्थता सक्रिय रहती है।

व्यंजनों की बलहीनता

भाषाविदों के अनुसार हिन्दी व्यंजनों में पांचों स्पर्श वर्गों के पहले चार व्यंजन 'बली' कहलाते हैं तथा अन्तिम पांच अनुनासिक व्यंजन एवं अन्तस्थ और ऊष्म 'बलहीन' होते हैं। प्रायः बलहीन व्यंजनों में ध्वनियों का परिवर्तन तेजी से होता है। ऐसी स्थिति में बलहीन व्यंजनों की ध्वनियां परिवर्तित होती चली जाती हैं।

लेखन पद्धति का प्रभाव

प्रायः शब्दों की ध्वनियां लेखन पद्धति के प्रभाववश बदल जाती हैं। रोमन लिपि में लिखी जाने वाली 'गुप्त', 'मिश्र', 'मित्र', जैसी जाति-उपाधियां तथा 'अशोक', 'बुद्ध', 'रामायण', 'महाभारत' जैसी व्यक्ति वाचक संज्ञाएं क्रमशः 'गुप्ता', 'मित्रा' एवं 'अशोका', 'बुद्धा', 'रामायणा', 'महाभारता' में बदल जाती हैं।

बलाघात

उच्चारण की प्रक्रिया में जिस ध्वनि पर बल दिया जाता है तथा श्वास का अधिक भार जिसके उच्चारण में व्यय होता है उसके आसपास की ध्वनियां दुर्बल होकर लुप्त हो जाती हैं। उदाहरण के लिए 'बारीक', 'बाज़ार' और 'आलोचना' के 'बरीक', 'बजार' और 'अलोचना'। इन में मध्य स्वर और आदि स्वर 'अ' के लोप को देखा जा सकता है। अंग्रेजी में इसी बलाघात के कारण 'डायरेक्टर' डिरेकटर और 'फायनेंस' फिनांस हो जाता है।

मात्रा, तुक और कोमलता का आग्रह

प्रायः कविता में उक्त कारणों से ध्वनियों में परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। हिन्दी साहित्य के रीति-कालीन कवियों ने ऐसे अनेक ध्वनि परिवर्तन किये हैं। 'विकराल' का 'विकरार', 'कमल' का 'कमलु', 'राय' का 'राया' और 'राई' ऐसे ध्वनि-परिवर्तन के उदाहरण हैं।

अन्धविश्वास

'अन्धविश्वास' के कारण जब किसी विशेष ध्वनि का उच्चारण 'टेवू' बन कर वर्जित हो जाता है तब उसकी जगह जो दूसरी ध्वनि उच्चारित होने लगती है वह परिवर्तन से आती है। उदाहरण के लिए गोभी नामक 'सब्जी' के आरम्भ में जो 'गो' ध्वनि आती है वह 'गो' अर्थात् 'गाय' का सूचक होने के कारण धर्मप्राण ग्रामीणों द्वारा उच्चरित नहीं की जाती हैं। वे इसका उच्चारण 'क' करते हैं और 'गोभी' को 'कोभी' कहते हैं।

विदेशी ध्वनि का निजी भाषा में अभाव

जब अपनी भाषा में विदेशी ध्वनियां नहीं मिल पाती हैं तब अपनी भाषा की उससे मिलती-जुलती नज़दीकी ध्वनियों का उच्चारण के लिए प्रयोग किया जाता है। फलतः ध्वनियां बदल जाती हैं। अंग्रेजी में द, ड ध्वनियां न तो हिन्दी की तरह मूर्धन्य है और न ही तालव्य। इतना ही नहीं वे हिन्दी त, द, न के समान दन्त्य भी नहीं हैं।

वस्तुतः ये वर्त्स्य ध्वनियां हैं। पर हिन्दी में वार्त्स्य ट, ड का अभाव होने के कारण इनका परिवर्तन या तो मूर्धन्य में हो गया है या तालव्य में। जैसे-'रिपोर्ट' से 'रपट' और 'आगस्ट' से 'अगस्त'।

ध्वनि नियम :

"किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में, किसी विशिष्ट काल और विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन या विकार को उस भाषा को ध्वनि नियम कहते हैं।"

ध्वनि नियम की इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि—1. ध्वनि-नियम किसी भाषा-विशेष का होता है। एक भाषा के ध्वनि-नियम दूसरी भाषा पर लागू नहीं किए जा सकते। उदाहरण के लिए जैसे अंग्रेजी के अधिकतर शब्दों में अन्तिम आर (R) का उच्चारण नहीं होता इसलिए मदर का उच्चारण 'मदअ' होता है पर हिन्दी में इसे लागू करके हम 'पैगम्बर' का पैगम्बअ नहीं कर सकते। 2. एक भाषा विशेष की भी सभी ध्वनियों पर एक ही नियम लागू नहीं होता अपितु कुछ विशिष्ट ध्वनियों पर ही लागू होता है। जैसे 'आर' को अनुच्चरित देखकर हम Pan (पैन) का पैअ नहीं कह सकते। 3. ध्वनि-परिवर्तन के नियम भी काल-सापेक्ष होते हैं अतः आज हुए किसी नवीन परिवर्तन को हम अति प्राचीन भाषा पर लागू नहीं कर सकते। 4. ध्वनि-नियम की उपर्युक्त परिभाषा से यह भी स्पष्ट है कि कोई विशिष्ट ध्वनि विशिष्ट दशा और परिस्थिति में ही परिवर्तित होती है।

ध्वनि-नियम के लिए ध्वनि-परिवर्तन की निम्नलिखित बातें भी ध्यान देने योग्य हैं—

1. ध्वनि-परिवर्तन निरन्तर होता रहा है। एक बार ध्वनि-संबंधी परिवर्तन आरंभ हो जाने से न वह पीछे की ओर मुड़ता है, न रुकता है।
2. किसी ध्वनि-संबंधी परिवर्तन का आरंभ तो प्रवृत्ति के रूप में होता है किन्तु जब वह स्थायी और व्यापक बन जाता है तो नियम कहलाता है।
3. ध्वनि-परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे होता है जिसे लक्षित नहीं किया जाता। अगर यह परिवर्तन इतना

मंद न हो तो एक पीढ़ी ही एक दूसरे की भाषा नहीं समझ सकती।

4. ध्वनि-परिवर्तन आस-पास की ध्वनियों से नियन्त्रित होता है। कहीं स्थान का, कहीं करण का, कहीं प्रयत्न का, कहीं बल का, कहीं स्वर का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है।
5. ध्वनि-नियम अतीत काल का होता है। इसलिए इसके विषय में पहले कुछ नहीं कहा जा सकता। विज्ञान के नियम भविष्य के लिए बहुत सीमा तक सही हैं।

ध्वनि-परिवर्तन एवं ध्वनि-नियम से संबंधित इन बातों के आलोक में प्रमुख ध्वनि-नियमों पर चर्चा इस प्रकार है-

ग्रिम नियम :

ध्वनि-नियमों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध नियम ग्रिम नियम है। इस नियम की ओर सबसे पहले रास्क और इहरे ने संकेत किया था किन्तु इसे व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय याकोब ग्रिम को है। याकोब ग्रिम जर्मन विद्वान् थे और आपका जन्म 1785 तथा मृत्यु 1863 ई. में हुई। ग्रिम ने 1819 में जर्मन भाषा का एक व्याकरण प्रकाशित किया। 1822 में उसके दूसरे संस्करण में इस नियम की विवेचना हुई। संस्कृत, ग्रीक, लातिन, गॉथिक, जर्मन आदि भारोपीय परिवार की भाषाओं की तुलना के प्रसंग में ग्रिम ने देखा कि मूल भारत-यूरोपीय भाषा की कुछ ध्वनियां जर्मनिक शाखा में कुछ दूसरे ही रूपों में प्रयुक्त हुई हैं। दूसरे शब्दों में इस नियम का संबंध भारोपीय स्पर्शों से है जो जर्मन भाषा में परिवर्तित हो गए थे। ग्रिम ने इस पर सूक्ष्मता से विचार किया, उन ध्वनि-परिवर्तनों को रेखांकित किया और नियमबद्ध कर दिया। जर्मन-भाषा का यह वर्ण-परिवर्तन दो बार हुआ—

1. प्रथम वर्ण परिवर्तन—ईसा से कई सदी पूर्व हुआ।
2. द्वितीय वर्ण परिवर्तन—सातवीं ई. उत्तरी जर्मन लोगों से ऐंग्लों सैक्सन लोगों के अलग होने के बाद हुआ।

दोनों ही परिवर्तनों का कारण जातीय मिश्रण है। ग्रिम का मानना है कि मूल भारत-यूरोपीय भाषा की ध्वनियां संस्कृत, ग्रीक और लातिन में सुरक्षित हैं। यह ध्वनि-संबंधी परिवर्तन केवल जर्मनिक शाखा की भाषाओं में हुआ। इसलिए ग्रिम-नियम केवल जर्मनिक शाखा पर घटित होता है। प्रथम ध्वनि-परिवर्तन प्रागैतिहासिक काल में हुआ। अनुमानतः तीसरी और छठी ई. पूर्व के बीच कभी हुआ होगा, किन्तु यह सब बातें अनुमान पर ही आधारित हैं। दूसरा ध्वनि-परिवर्तन सातवीं शताब्दी ई॰ के लगभग हुआ जब उच्च जर्मन (आज का जर्मन) और निम्न जर्मन (अंग्रेजी आदि) पृथक् हुई। यह उच्च और निम्न का प्रयोग भौगोलिक दृष्टि से है। जर्मनी का दक्षिणी भाग ऊँचा है और उत्तर भाग अपेक्षाकृत समतल।

प्रथम ध्वनि-परिवर्तन

इस प्रथम ध्वनि-परिवर्तन में मूल भारोपीय भाषा के कुछ स्पर्श परिवर्तित हो गए जिसे तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

मूल भारत-यूरोपीय	*जर्मनिक*
1. क, त, प (अघोष अल्पप्राण) का	ख (ह) थ फ (अघोष महाप्राण)
2. घ, ध, भ (घोष महाप्राण) का	घ ध भ (घोष महाप्राण)
3. ग, द, ब (घोष अल्पप्राण) का	ग, द, ब (घोष अल्पप्राण)

इसे यूं भी स्पष्ट किया जा सकता है—

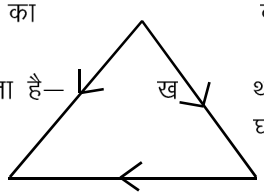

क त प ग द ब

यहां अपनी बात स्पष्ट करने के लिए भारत यूरोपीय की प्रतिनिधि के रूप में संस्कृत और जर्मनिक शाखा की प्रतिनिधि के रूप में अंग्रेजी के उदाहरण दिए जा रहे हैं—

	भारत यूरोपीय संस्कृत	*जर्मनिक अंग्रेजी*
क से ख या ह	कः	हु (Who)
	कद्	ह्वाट (What)
त से थ	त्रि	थ्रि (Three)
	तनु	थिन (Thin)
प से फ	पद	फुट (Foot)
	पत्र	फ़ेदर (Feather)
ध या ह से श	हंस	गुस (Goose)
ध से द	विधवा	विडोउ (Widow)
	वंध	बैंड (Band)
भ से ब	भ्रातृ	ब्रदर (Brother)
	भ्रू	ब्राउ (Brow)
ग से क	गौ	काउ (Cow)
	युग	योक (Yoke)
द से त	द्वौ	टू (Two)
	स्वेद	स्वेट (Sweat)
ब से प	तुर्बा (Turba)	थोर्प (Thorp)
	लातिन	

'ब' से 'प' का उदाहरण संस्कृत में नहीं मिलता।

द्वितीय वर्ण परिवर्तन

प्रथम ध्वनि-परिवर्तन में मूल भाषा से जर्मनिक भाषा अलग हुई थी। पर इस द्वितीय वर्ण परिवर्तन में जर्मन भाषा के ही दो रूप उच्च जर्मन और निम्न जर्मन में अन्तर पड़ा। इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि निम्न जर्मन वाले (अंग्रेज आदि) विकास से पूर्व ही वहां से हट गये इसलिए उनमें तो कोई अन्तर नहीं पड़ा परन्तु उच्च जर्मन वाले जो नहीं थे द्वितीय वर्ण परिवर्तन से प्रभावित हुए और परिणामस्वरूप उच्च जर्मन और निम्न जर्मन की कुछ ध्वनियां भिन्न-भिन्न हो गई। निम्न जर्मन की प्रतिनिधि भाषा अंग्रेजी से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

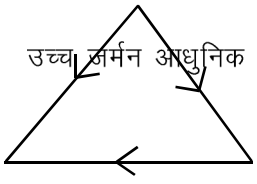

क त प	निम्न जर्मन अंग्रेजी	उच्च जर्मन आधुनिक जर्मन
ग द ब ख थ फ		
क से ख	बुक (Book)	बुख (Buch)
त से थ (स)	वाटर (Water)	व्हासेर (Wasser)
प से फ	स्प्रिंग (Spring)	फ्रयूलिंग (Fruling)
	स्लिप (Slip)	श्लाइफ्रेन (Schleifen)

थ से द	थ्रि (Three)	द्रेइ (Drei)
	नॉर्थ (North)	नोरदेन (Norden)

ग्रिम नियम के अपवाद

प्रथम और द्वितीय वर्ण-परिवर्तन के संबंध में ग्रिम ने जो तालिका दी थी वह इस प्रकार है—

मूल भाषा		*निम्न जर्मन*		*उच्च जर्मन*
घ ध भ	=	ग द ब	=	क त प
ग द ब	=	क त प	=	ख (ह) भ फ
क त प	=	ख (ह) भ फ	=	ग द ब

प्रथम वर्ण परिवर्तन

द्वितीय परिवर्तन

ग्रिम द्वारा दिया गया नियम ऊपर से बहुत सीधा और सरल प्रतीत होता है। किन्तु इस नियम के बहुत से अपवाद हैं। स्वयं ग्रिम को बहुत सारे अपवाद मिले जिनका समाधान इस नियम से नहीं हो सकता। कुछ अपवाद ऐसे मिले हैं जो अपने-आप में पर्याप्त नियमित थे जैसे क त प से पहले यदि स रहता है (sk, st, sp) तो ऊपर बताया गया ध्वनि-परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार त से पहले क् और प् होने से (kt, pt) भी 'त' नहीं बदलता। यदि त्त रहता है तो थ्त और फिर स्स हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि स्क, स्त, क्त, प्त, और त्त के संयोग में यह नियम लागू नहीं होता जैसे—

	भारत यूरोपीय	*जर्मनिक*
1.	पिस्केस	फिश (Fish) (ख होना चाहिए था)
2.	अस्ति	इस्त (ist) (था होना चाहिए था)
3.	स्पश	स्पेधेन (फ होना चाहिए था)
4.	नप्ता	निफ्त (थ होना चाहिए था)
5.	वित्त	व्हिस्सा (Wissa) (थ होना चाहिए था)

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जब क त प संयुक्त रूप से आते हैं तो उन पर उपर्युक्त नियम लागू नहीं होता।

ग्रासमैन नियम :

ग्रिम-नियम में बहुत सारे अपवादों के बाद ध्वनि नियमों के क्षेत्र में ग्रासमैन नियम की चर्चा की जाती है। ग्रिम ने अपने समय में स्वयं बहुत सारे अपवादों का समाधान कर दिया था। उनके नियमानुसार क त प का क्रमशः ख (ह) थ फ होना चाहिए पर कुछ शब्दों में क त प का ग द ब मिलता है जैसे ग्रीक किग्सो से हो (ho), तुप्लोस से थम (Thumb) और पिकास से 'फाड़ी' (Fody) बनना चाहिए था पर बनता है गो (go), दुन (dumb), बाडी (body), ग्रामसैन ने इस समस्या पर विचार करते हुए बताया कि भारत यूरोपीय मूल भाषा में यदि शब्द या धातु के आदि और अंत दोनों स्थानों पर महाप्राण हो तो संस्कृत ग्रीक आदि में एक अल्पप्राण हो जाता है। जैसे संस्कृत में 'धा' धातु से 'धधाति' रूप होना चाहिए पर होता है दधाति। दो महाप्राण ध्वनियां ध ध जब एक साथ आयी तो प्रथम महाप्राण (ध) की अल्पप्राण (द) हो गया। इसी तरह 'भृ' धातु से भिभृति के बदले 'बिभर्ति' रूप होता है यहां भी प्रथम भ का 'ब' हो गया है। इस प्रकार के अपवादों में दो महाप्राण ध्वनियों वाले स्थल पर एक ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है और यह नियम संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं पर जिस प्रकार लागू होता है उसी प्रकार जर्मनिक भाषा पर भी। जहां ग द ब होता है वहां क त

प हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारोपीय मूल भाषा की दो अवस्थायें रही होंगी। प्रथमावस्था में दो महाप्राण रहे होंगे और दूसरी अवस्था में नहीं इसलिए अपवाद स्वरूप क त प आदि के स्थान पर जहां ग द ब मिलते हैं प्राचीन काल में क त प का पुराना रूप ख (ह) थ फ अर्थात् भारोपीय में घ ध भ रहा होगा और घ ध भ से ग द ब बना होगा जो नियमानुकूल है। इस प्रकार ग्रिम-नियम में जितने अपवाद इस तरह के थे, जिनमें ग्रिम-नियम से एक पग आगे परिवर्तन हो जाता था, ग्रासमैन नियम से हल हो गए।

फेर्नर (वर्नर-नियम) नियम :

उपर्युक्त नियमों के बाद भी कुछ अपवाद रह गए थे उनका निराकरण करने का प्रयास फेर्नर ने किया। ग्रिम-नियम के अनुसार संस्कृत, ग्रीक आदि के बहुत से शब्दों की क, त, प का जर्मनिक में ख़, थ़, फ़ होना चाहिए पर होता है ग, द, ब। इसी समस्या का समाधान बताते हुए फेर्नर ने पता लगाया कि ग्रिम-नियम स्वराघात पर आधारित था। मूलभाषा के क त प के पहले यदि स्वराघात हो तो ग्रिम-नियम के अनुसार परिवर्तन होता है और यदि स्वराघात क, त, प के बाद वाले स्वर पर हो तो परिवर्तन एक कदम और आगे ग्रासमैन की भाँति ग द ब हो जाता है। जैसे—

	संस्कृत	*गॉथिक*
1.	युवशम्	युंग्स (yuggs) श का ग हो गया।
2.	शतम्	हुद (hund) त का द हो गया।
3.	सप्तम्	सिबुन (sibum) प का ब हो गया।

ग्रिम ने यह भी कहा था कि 'स' के लिए 'स्' ही मिलता है पर कुछ उदाहरणों में स का र के रूप में परिवर्तन हुआ है। इसके लिए भी फेर्नर का बलाघात का नियम ही क्रियाशील है। स के पहले स्वराघात रहने पर स ही रहेगा और स के बाद स्वराघात होने पर र हो जाएगा। फेर्नर ने यह भी बताया है कि यदि मूल भारोपीय क त प आदि के पूर्व से मिला हो (अर्थात् एक, स्त, स्प) तो जर्मनिक आदि में आने पर किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता—

लैटिन	*अंग्रेजी*	*गाथी*
Piskis	.....	fiskis
Aster	Star	.....

तालव्य-नियम :

यह नियम 'कालित्ज के तालव्य नियम' के नाम से भी जाना जाता है परन्तु इस नियम का श्रेय छह विद्वानों को है जो लगभग किसी-न-किसी रूप में एक ही समय इसके निष्कर्षों तक पहुँचे। 1875 में विल्हेम थॉम्सन ने अपने व्याख्यान में इसकी ओर संकेत किया था लेकिन इस विषय में उनके विस्तृत लेख आने से पहले ही श्मिट ने इस पर एक लेख लिखा जो 1920 में प्रकाशित हुआ। इन दोनों के अतिरिक्त एसाय तेंगर की भी एक पुस्तिका इस विषय पर प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने कालित्ज और संस्यूर के इससे संबंधित विचारों की बात भी कही। फेर्नर भी इस नियम के कुछ परिणामों तक पहुँच चुका था। इस नियम के ज्ञात होने के पूर्व तक विद्वानों का विश्वास था कि कुछ शब्दों में संस्कृत अधिक बातों में अन्य सगोत्रीय भाषाओं की अपेक्षा मूल भारोपीय भाषा के निकट है। कुछ शब्दों में संस्कृत के च और ज के स्थान पर अन्य भाषाओं में क और ग मिलते हैं। इससे यह विश्वास बन गया है कि वहां पर मूलतः च और ज ही थे और ध्वनि-परिवर्तन से अन्य भाषाओं में क और ग हो गए हैं। इस परिवर्तन का कारण अब तक विद्वानों की समझ में ना आ सका था। तालव्य-नियम की खोज के फलस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि जिन संस्कृत शब्दों में 'अ' स्वर ध्वनि की दृष्टि से ग्रीक या लैटिन 'ओ' की भाँति है उसके पहले 'क' या 'ग' ही व्यंजन पाया जाता है, पर यदि 'अ' स्वर लैटिन या ग्रीक ई (e) की भांति है तो कंठ्य क या ग न होकर तालव्य च और ज मिलता है। एक ही धातु पच् से बने रूप 'पचति' और 'पकम्' में भी यह बात देखी जा सकती है। इससे

निष्कर्ष यह निकला कि किसी समय संस्कृत में 'अ' के स्थान पर 'ई' और 'ओ' स्वर थे। अग्रस्वर 'इ' के पूर्व का कंठ्य व्यंजन तालव्य नियम में बदल गया जिसके फलस्वरूप 'क' का 'च' और 'ग' का 'ज' हो गया। कंठ्य व्यंजन के तालव्य हो जाने से इसे तालव्य-नियम कहा जाता है। इस खोज से संस्कृत मूल से समीप होने की धारण बदल गई और अब संस्कृत की अपेक्षा ग्रीक लैटिन आदि मूल भारोपीय भाषा के अधिक समीप समझी जाने लगी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तालव्य नियम के अनुसार मूल भारोपीय भाषा का तृतीय श्रेणीय वर्ग संस्कृत में कहीं-कहीं ही रहा पर पहले आने वाले स्वर के कारण कहीं-कहीं चवर्ग (तालव्य में) में परिवर्तित हो गया।

1.4.6 सारांश :

ध्वनि–नियम किसी भी भाषा विशेष में किसी विशेष काल में होने वाले परिवर्तनों से अवगत करवाता है और भाषा की परिवर्तनशीलता को ध्वनि के संदर्भ में रेखांकित करता है। ध्वनि नियम का प्रयोग अधिकतर प्राकृतिक नियम के लिए होता है जो किसी विशेष वस्तु आदि के संबंध में लागू होते हैं। जब कोई विशेष क्रिया समय एवं स्थान की सीमा के व्यवधान को तोड़कर घटित होती है तो वह नियम कहलाती है।

1.4.7 बोध प्रश्न :

1. हिन्दी में प्रमुख ध्वनि–नियम कौन से हैं? भाषा में इनका क्या महत्व होता है?
2. ग्रिम नियम की व्याख्या करें।
3. ग्रासमैन नियम का महत्व स्पष्ट करें।
4. वर्नर नियम की व्याख्या करें।
5. तालव्य नियम का महत्व स्पष्ट करें।